इग्नू
जन–जन की
विश्वविद्यालय

BSOC-132

भारतीय समाजशास्त्र

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. अभिजीत दासगुप्ता
दिल्ली अर्थशास्त्र विद्यापीठ
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. मैत्रेयी चौधरी
सी एस एस एस, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. निलिका महरोत्रा
सी एस एस एस, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. देबल सिंह रॉय
समाजशास्त्र विभाग
एस ओ एस एस, इग्नू, नई दिल्ली

प्रो . त्रिभुवन कपूर
समाजशास्त्र विभाग
एस ओ एस एस, इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. नीता माथुर
समाजशास्त्र विभाग
एस ओ एस एस, इग्नू नई दिल्ली

प्रो. अनु अनेजा
लिंग और विकास अध्ययन विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. पुष्पेंद्र कुमार
समाजशास्त्र विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

डॉ . अभिजीत कुंडु
समाजशास्त्र विभाग
वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. अर्चना सिंह
समाजशास्त्र विभाग
एस ओ एस एस, इग्नू

डॉ. किरणमई भुशी
समाजशास्त्र विभाग
एस ओ एस एस, इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. रबीन्द्र कुमार
समाजशास्त्र विभाग
एस ओ एस एस, इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. आर. वाशूम
समाजशास्त्र विभाग
एस ओ एस एस, इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. शुभांगी वैद्य
अंतर और परा – अनुशासन अध्ययन

इकाई		लेखक	संपादक
खंड 1	**भारत एक बहुलवादी समाज**		**डॉ अर्चना सिंह**
इकाई 1	भारत में एकता और विविधता	इकाई 1, BDP ESO-12 पृ.11-25, डॉ. अर्चना सिंह से अनुकूलित/अनु. राजेंद्र पांडेय	
इकाई 2	बदलता भारत	डॉ. रितु सिन्हा, जामिया मिलिया इस्लामिया और एक अंश BDP ESO-12, अर्चना सिंह से अनुकूलित/अनु. राजेंद्र पांडेय	
खंड 2	**सामाजिक संरचना और प्रथाएँ**		**डॉ. अर्चना सिंह**
इकाई 3	जनजाति	डॉ. टी. गांगमी,दि.वि./अनु. शास्वत कुमार	
इकाई 4	जाति	डॉ. शैली भाषांजली/अनु. राजेंद्र पांडेय/शास्वत कुमार	
इकाई 5	वर्ग	BDP ESO-12 डॉ अर्चना सिंह से अनुकूलित/ राजेंद्र पांडे , शास्वत कुमार	
खंड 3	**सामाजिक संस्थाएँ और परिवर्तन**		**डॉ. अर्चना सिंह**
इकाई 6	परिवार, विवाह और नातेदारी	BDP ESO-12 भारत में समाज, खंड 2, अर्चना सिंह से अनुकूलित/अनु. राजेंद्र पांडेय	
इकाई 7	धर्म और समाज	डॉ. कुसुमलता,जामिया मिलिया इस्लामिया/अनु. राजेंद्र पांडेय	
खंड 4	**सामाजिक पहचान और परिवर्तन**		**डॉ. अर्चना सिंह**
इकाई 8	दलित आंदोलन	डॉ. रितु सिन्हा, जामिया मिलिया इस्लामिया/अनु. विजय शर्मा	
इकाई 9	लिंगाधारित आंदोलन	डॉ. टी. गांगमी, दिल्ली और कुछ अंश डॉ. अर्चना सिंह/ अनु. एम.पी . कंवल	
इकाई 10	जनजाति और नृजातीय आंदोलन	डॉ एजाज अहमद गिलानी, जामिया मिलिया इस्लामिया/ अनु. एम.पी. कंवल	
खंड 5	**राज्य, समाज और धर्म**		**डॉ. अर्चना सिंह**
इकाई 11	सांप्रदायिकता	डॉ अमिय कुमार दास, तेजपुर वि. वि अनु. एम.पी. कंवल	
इकाई 12	धर्मनिरपेक्षता	ESO-15 समाज और धर्म, खंड 3, इकाई 16 अर्चना सिंह से अनुकूलित/अनु.एम.पी. कंवल	

विशिष्ट आभार : प्रो. देबल सिंह रॉय एवं डॉ. किरणमई भूशी

हिन्दी इकाइयों का संशोधनः प्रो. अनुराग जोशी, प्रो. अल्का धमेजा, प्रो. रबीन्द्र कुमार, डॉ. बंदना शर्मा

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अर्चना सिंह
एस ओ एस एस, इग्नू

प्रधान संपादक

प्रो. एहसान-उल हक
सी एस एस एस, जे एन यू, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण दल

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन),
सा0नि0वि0प्र0, इग्नू, नई दिल्ली

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन),
सा0नि0वि0प्र0, इग्नू, नई दिल्ली

मार्च, 2020

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

ISBN: **978-93-89969-31-3**

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश किसी भी रूप में पुनः प्रकाशित नहीं किया जा सकता, अनुलिपिक या किसी अन्य साधन द्वारा,

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बिना किसी लिखित आदेश व पुनः इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के कोर्स की सूचना विश्वविद्यालय के मैदान गढ़ी कार्यालय, नई दिल्ली-110068 के द्वारा प्राप्त की जा सकती है अथवा विश्वविद्यालय की वेबसाइट http://www.ignou.ac.in देखें

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली की ओर से कुलसचिव सा0नि0वि0प्र0 द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर्स, सी-206, शाहीन बाग, जामिया नगर, नई दिल्ली

मुद्रक : एस0 जी0 प्रिण्ट पैक्स प्रा0 लि0, एफ–478, सेक्टर 63, नोएडा–201301

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय-सूची

		पृष्ठ सं.
खंड 1	**भारत एक बहुलवादी समाज**	**9**
इकाई 1	भारत में एकता और विविधता	11
इकाई 2	बदलता भारत	25
खंड 2	**सामाजिक संरचना और प्रथाएँ**	**45**
इकाई 3	जनजाति	47
इकाई 4	जाति	62
इकाई 5	वर्ग	76
खंड 3	**सामाजिक संस्थाएँ और परिवर्तन**	**101**
इकाई 6	परिवार, विवाह और नातेदारी	103
इकाई 7	धर्म और समाज	129
खंड 4	**सामाजिक पहचान और परिवर्तन**	**143**
इकाई 8	दलित आंदोलन	145
इकाई 9	लिंगाधारित आंदोलन	158
इकाई 10	जनजाति और नृजातीय आंदोलन	178
खंड 5	**राज्य, समाज और धर्म**	**195**
इकाई 11	सांप्रदायिकता	197
इकाई 12	धर्मनिरपेक्षता	210
शब्दावली		**226**

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

विषय के रूप में समाजशास्त्र को औद्योगिक क्रांति की पुत्री माना जाता है। अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह, यह यूरोप में आधुनिक औद्योगिक पूंजीवाद के विकास के साथ विकसित हुआ है। ज्ञानोदय काल और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप विकास ने न केवल लोगों के जीवन और उत्पादन में बल्कि उनके विचारों और जीवन जीने के तरीकों में भी क्रांति ला दी। यूरोपीय दुनिया में गति के आमूलचूल परिवर्तन में सामाजिक परिवर्तन और बदलाव की सामान्य समझ है। इसने भारत सहित विश्व स्तर पर सभी समाजों को नाटकीय रूप से प्रभावित किया ।

समाजशास्त्र उन तरीकों का अध्ययन है जिसमें मनुष्य एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। यह स्थापित सामाजिक संबंधों के नेटवर्क का अध्ययन करता है जिसमें सभी रीति-रिवाजों, विश्वासों, कलाओं और शिल्पों में सब कुछ निहित है। इसे समाज में नेटवर्क या सामाजिक संबंधों के तरीके (पैटर्न) के अध्ययन के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। इस प्रकार, एक विषय के रूप में, समाजशास्त्र समाज की प्रकृति का अध्ययन करने का प्रयास करता है। इसकी सामाजिक संरचना और कार्य या व्यवहार उसमें शामिल हैं। यह समाज में विभिन्न सामाजिक संस्थाओं को समझाने की कोशिश करता है और सामाजिक परिवर्तन आम तौर पर समाज को कैसे प्रभावित करता है और विशेष रूप से समाजशास्त्र यह जानने का प्रयास करता है कि विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ कैसे बदलती हैं, जैसे कि परिवार, विवाह, रिश्तेदारी, अर्थव्यवस्था, राजनीति आदि, सभी समाजों में निरंतर बदलते रहते हैं। कुछ परिवर्तन आंतरिक होते हैं और कुछ परिवर्तन बाहरी कारकों के कारण होते हैं जो अन्य समाजों और संस्कृतियों के प्रभाव के कारण होते हैं, जैसे कि, भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान। यह लोगों की विभिन्न भूमिकाओं और प्रस्थितियों में ये परिवर्तन लाते हैं जो समाजशास्त्र के विषय के बहुत मूल हैं। इस प्रकार, व्यक्तिगत स्तर से सामाजिक समूहों और समुदायों के स्तर तक जो लोगों को जोड़ता है और समाज में गतिशीलता लाता है, समाजशास्त्री के लिए एक अध्ययन का विषय है ।

हमने भारत का समाजशास्त्र के पहले पाठ्यक्रम में, **पहले खंड** में भारत को समझाने की कोशिश की है। भारत में एक बहुल समाज पर दो इकाइयाँ; 1) **भारत में एकता और विविधता** और 2) **बदलता भारत**। इन इकाइयों में भारत में समाज की समग्र आयामों का वर्णन किया गया है। पहली इकाई में भारत के बहुत ही अनूठे पहलू पर प्रकाश डाला गया है, जो कि कई संस्कृतियों, समुदायों, क्षेत्रीय मतभेदों, भाषाओं आदि के साथ एक बहुल समाज है। इनसे भारत में अपार सामाजिक विविधताएं हैं। फिर भी, हम आपके ज्ञान को अपनी भौगोलिक सीमाओं के साथ-साथ भारत को एकजुट करने वाली अन्य ताकतों के संदर्भ में एकता के उन बिंदुओं का वर्णन करते हैं जो भारत की एकता के बलों को सामने लाते हैं। समय के साथ सब कुछ बदल जाता है और भारत में भी समाज में ऐसा ही बदलाव आता रहता है। इसलिए बदलते भारत में बदलाव के इन तत्वों पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरा खंड, सामाजिक संरचना और प्रथाएँ भारत में समाज को परिभाषित करने वाले तीन अलग-अलग पहलुओं के बारे में बात करता है। ये जनजाति, जाति और वर्ग हैं। हम आपको भारत में जनजातियों की प्रकृति के बारे में बताते हैं। वे कैसे मौजूद हैं और बड़े समाज में आत्मसात हुए हैं। उनके जीवन में दिन-प्रतिदिन आने वाली चुनौतियाँ जिनका वे सामना करते हैं । जाति सामाजिक स्तरीकरण का एक अन्य रूप है जो भारतीय समाज के लिए अद्वितीय है। जाति के विपरीत, वर्ग सामाजिक स्तरीकरण का एक और रूप है जो कि

आय और मुद्रा से जुड़ा हुआ एक मुक्त व्यवस्था है। भारत में स्वतंत्रता से पहले, हमने पाया कि जाति व्यवस्था और वर्ग एक दूसरे के साथ थे। हालांकि, औपनिवेशिक प्रभाव के कारण और विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद और हमारे संविधान के प्रावधानों के कारण, समाज में तेजी से सामाजिक गतिशीलता आई है और इसके कारण भारत में जाति की पहचान और वर्ग पहचान एक दूसरे से अलग-अलग हो गए हैं।

तीसरा खंड, सामाजिक संस्थाएँ और परिवर्तन भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी के विषय पर ध्यान केंद्रित करने की कोशिश करता है। हमने इन अवधारणाओं को समझाने के लिए अलग-अलग दृष्टिकोण और सिद्धांत प्रदान किए हैं। उपयुक्त उदाहरणों के साथ धर्म सबसे संवेदनशील लेकिन समाज की बहुत महत्वपूर्ण संस्था है, जिसे सामाजिक रूप से विश्लेषित किया गया है और आपको समझाया गया है।

चौथे खंड, सामाजिक पहचान और परिवर्तन की तीन इकाइयाँ हैं। प्रत्येक इकाई प्रमुख सामाजिक पहचान बताती है जिसके आधार पर समाज स्तरीकृत होता है और पदानुक्रमित रूप में व्यवस्थित होता है। सामाजिक आंदोलनों को जन्म देने वाली इन पहचानों में से कुछ के साथ निम्न सामाजिक प्रस्थिति के कारण कई सामाजिक लांछन और शोषण होते हैं। इसलिए हमने भारत में दलित सामाजिक आंदोलनों, आदिवासी और जातीय आंदोलनों और लैंगिक आधारित आंदोलनों का वर्णन किया है।

पांचवां और अंतिम खंड, राज्य, समाज और धर्म भारत में समाज के दो संबंधित लेकिन विभिन्न मुद्दों पर प्रकाश डालता है। पहला, सांप्रदायिकता है और दूसरा धर्मनिरपेक्षता है। यहाँ इन दोनों शब्दों से जुड़े ऐतिहासिक, सामाजिक और आलोचनात्मक मुद्दों का विश्लेषण किया गया है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1
भारत एक बहुलवादी समाज

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 भारत में एकता और विविधता*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 एकता और विविधता की अवधारणा

1.2.1 विविधता का अर्थ

1.2.2 एकता का अर्थ

1.3 भारत में विविधता के रूप

1.3.1 प्रजातीय विविधता

1.3.2 भाषायी विविधता

1.3.3 धार्मिक विविधता

1.3.4 जातिगत विविधता

1.4 भारत में एकता की कड़ी

1.4.1 भू-राजनीतिक एकता

1.4.2 तीर्थाटनों की संस्था

1.4.3 समायोजन की परंपरा

1.4.4 परस्पर निर्भरता की परंपरा

1.5 सारांश

1.6 संदर्भ

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आपके द्वारा संभव होगा :

- एकता और विविधता की अवधारणों को स्पष्ट करना;
- भारत में विविधता के रूप और आधार बताना;
- भारत में एकता के सूत्रों और उनके बनने की प्रक्रिया की जाँच करना; और
- यह स्पष्ट करना कि एकता के एकरूपता मॉडल के स्थान पर सामाजिक संस्कृति मॉडल क्यों?

1.1 प्रस्तावना

प्रथम भाग (1.2) में हमने विविधता और एकता का अर्थ स्पष्ट किया है। दूसरे भाग (1.3) में भारतीय समय में विविधता के रूपों का चित्रण किया है। इस पर विस्तृत चर्चा के लिए हमने प्रजातीयए भाषायी, धार्मिक और जातिगत विविधता के चार रूपों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

तीसरे भाग (1.4) में हमने भात में एकता की कड़ियों पर प्रकाश डाला है। ये कड़ियां है भू-राजनीतिक, तीर्थाटन-संस्कृति, समायोजन की परंपरा और परस्पर निर्भरता की परंपरा।

* यह इकाई ESO-12, इग्नू, डॉ. अर्चना सिंह, समाजशास्त्र संकाय द्वारा अनुकूलित है।

मुख्यतः हमने इस तथ्य को नोट किया है कि भारतीय एकता सम्मिश्रित संस्कृति के रूप में विकसित हुई है, एकरूप संस्कृति के रूप में नही।

1.2 एकता और विविधता की अवधारणा

इस भाग में 'विविधता' शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना ही हमारा मुख्य लक्ष्य होगा।

1.2.1 विविधता का अर्थ

सामान्यतः विविधता का तात्पर्य असमानता है। परन्तु हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसका अर्थ असमानता के अलावा कुछ और भी है। इसका अर्थ है सामूहिक असमानता, अर्थात् ऐसी असमानता जिससे एक वर्ग के लोगों को दूसरे वर्ग के लोगों से अलग किया जा सके। यह असामानता किसी भी तरह की हो सकती है अर्थात् वैविकीय, धार्मिक, भाषायी आदि। उदाहरणस्वरूप जैविक असमानता के कारण हममें प्रजातीय अंतर है। उसी प्रकार धार्मिक असमानता के आधार पर हमें धार्मिक विविधता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि विविधता सामूहिक असमानता की ओर संकेत करती है।

विविधता शब्द एकरूपता (uniformity) के प्रतिकूल है। एकरूपता का अर्थ किसी विशेष प्रकार की समरूपता से है जो सम्पूर्ण समूह की विशेषता होती है।

'इकाई' (Unit) का अर्थ एक होता है, एवं ''फॉर्म'' (Form) या 'रूप' का तात्पर्य सामान्य व्यवहार से है। अतः जब सभी व्यक्तिों में कोई चीज़ सामान्य हो जाती है तब हम उसे एकरूपता दर्शाने वाली कह सकते है। जब एक विद्यालय के छात्र, पुलिस बल के सदस्य या सैन्य बल एक ही प्रकार के वस्त्र धारण करते हैं तब यह कहा जाता है कि वे सभी यूनिफॉर्म में है। विविधता के समान ही, एकरूपता भी एक सामूहिक संकल्पना है। जब व्यक्तियों का एक समूह समान विशेषताओं से युक्त हो, चाहे वह भाषा, धर्म या किसी और आधार पर हो, वह उस संदर्भ में एकरूपता का परिचायक है। परन्तु जब हमारे बीच व्यक्तियों के ऐसे समूह हों जो अलग-अलग प्रजातियों, धर्मों और संस्कृतियों से जुड़े हों, तब वे विविधता का ही प्रतिनिधित्व करेंगे। डी.एन. मजूमदार की एक पुस्तक जिसका शीर्षक 'रेसेज़ एंड कल्चर्स ऑफ इंडिया' (Races and Cultures of India) है, इस पुस्तक के शीर्षक में प्रयुक्त के बहुवचन में दिये शब्दों रेसेज़ (सिर्फ रेस नहीं) और कल्चर्स (सिर्फ कल्चर नहीं) पर ध्यान दें। इस तरह विविधता का अर्थ है विभिन्नता। भारत में समाज के रूपों को समझने के लिये इसका अर्थ समूहों और संस्कृतियों की विविधता से है। भारत में ऐसी विभिन्नताओं की बहुलता है। हमारे यहाँ प्रजातियों, धर्मों, भाषाओं, जातियों और संस्कृतियों की विविधता है। यही कारण है कि भारत अपनी समाजिक-सांस्कृतिक विविधता के लिए प्रसिद्व है।

1.2.2 एकता का अर्थ

एकता का अर्थ है एकीकरण। यह एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक स्थिति है। यह एक होने की भावना अर्थात् 'हम एक हैं' को व्यक्त करता है। यह उस कड़ी का पर्याय है जो समाज के सदस्यों को एक साथ जोड़ कर रखती है।

एकता और एकरूपता में कुछ अंतर है। एकरूपता में पहले से ही यह मान लिया जाता है कि समानता होगी ही, परन्तु एकता में ऐसा नहीं होता। इस प्रकार एकरूपता पर आधारित भी हो सकती है और नहीं भी, एकता का जन्म एकरूपता से हो सकता है। दर्खाइम ने इस तरह की एकता को यांत्रिक पारस्परिक निर्भरता (Mechanical solidarity) कहा है। इस

तरह की एकता जनजातिय समाजों तथा पारंपरिक समाजों में पाई जाती है। परन्तु पारस्परिक निर्भरता (Organic solidarity) के रूप में उल्लेख किया है। इस प्रकार की एकता आधुनिक समाज की विशेषता है।

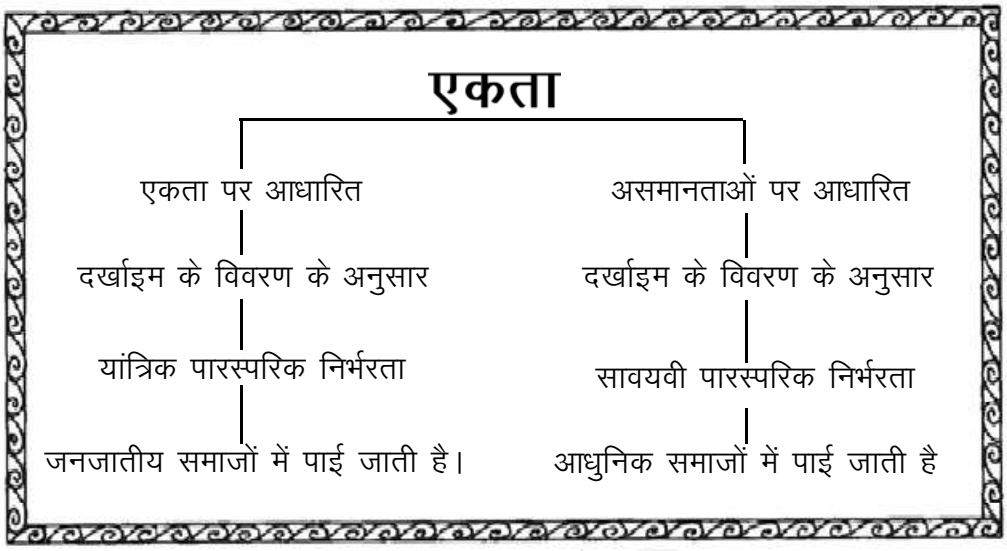

चित्र 1.1: एकरूपता के प्रकार

ध्यान रखने वाला तथ्य यह है कि एकता एकरूपता पर आधारित हो, यह आवश्यक नहीं है। जैसा कि पहले कहा गया है, एकता एकीकरण की ओर इंगित करती है। एकीकरण का अर्थ असमानता की अनुपस्थिति कदापि नहीं है। निस्संदेह, यह उस बंधन का पर्याय है जो अलग-अलग समूहों को एक दूसरे से बाँध कर रखती है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में से विविधता के सही अर्थ पर (√) निशान लगाएं।
   क) दो व्यक्यिों के बीच असमानताएं
   ख) समूह के सदस्यों में समानताएं
   ग) समूहों के बीच असमानताएं

2) निम्नलिखित में से सामाजिक विविधता के सही उदाहरण पर (√) निशान लगाएं।
   क) पुरुष और महिलाओं के बीच स्वभावगत असमानताएं
   ख) पड़ोसियों के बीच सम्पतिगत असमानताएं
   ग) दो समूहों के बीच धार्मिक मान्यताओं संबंधी असमानताएं

3) यह बताएं कि निम्नलिखित कथनों में से कौन गलत हैं। स का प्रयोग सही के लिए और ग का प्रयोग गलत के लिए करें।
   क) एकता का अर्थ असमानताओं का न होना है।
   ख) एकता विविधता का प्रतिकूल अर्थ है।
   ग) एकरूपता एकता की एक आवश्यक शर्त है।
   घ) विविधता में एकता शब्दों में एक विरोधाभास है।
   ड) यांत्रिक पारस्परिक निर्भरता एकरूपता पर आधारित है।
   च) एकता एकीकरण दर्शाती हैं।

1.3 भारत में विविधता के रूप

जैसा कि पहले ही संकेत दिया जा चुका है, भारत में विभिन्न प्रकार की विविधताएं पायी जाती हैं। इसमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रकार प्रजातीय, भाषायी, धार्मिक और जाति आधारित है। आइए अब इनमें से प्रत्येक पर विस्तार से चर्चा करें।

1.3.1 प्रजातीय विविधता

आपने भारत में विभिन्न प्रजातियों वाले व्यक्तियों को देखा होगा। प्रजाति (race) ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिनमें त्वचा का रंग, नाक का आकार, बालों के प्रकार आदि कुछ स्थायी शरीरिक विशेषताएं मौजूद होती है।

हरबर्ट रिज़ले ने भारत के लोगों को सात प्रजातिय समूहों में बांटा है। ये हैं, (1) तुर्क-ईरानी, (2) भारतीय आर्य, (3) शक-द्रविड़, (4) आर्य द्रविड, (5) मंगोल-द्रविड़, (6) मंगोलाभ, एवं (7) द्रविड़। इन सात प्रजातीय समूहों को कम कर के तीन मूल समूहों अर्थात् भारतीय आर्य, मंगोली एवं द्रविड़ में बांटा जा सकता है। उनकी विचारधारा में अंतिम दो समूह जनजातीय भारत की प्रजातीय संरचना में देखे जा सकते हैं। हरबर्ट रिज़ले 1891 की जनगणना संक्रिया में पर्यवेक्षक ये और जनगणना से लिए गए आंकड़ों के आधार पर उन्होंने प्रजातियों का वर्गीकरण किया था। वस्तुतः यह वर्गीकरण शरीरिक विशेषताओं पर आधारित न होकर भाषा प्रकारों पर आधारित था। अतः वर्गीकरण की इन कमियों के कारण रिज़ले की काफ़ी आलोचना की गई।

जे.एच. हटन, डी.एन. मजूमदार और बी.एस. गुहा जैसे अन्य प्रशासनिक अधिकारियों और नृविज्ञानियों ने भारतीयों का अधुनातन प्रजातीय वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जो इस क्षेत्र में अब तक किए गए अनुसंधानों पर आधारित है। हटन और गुहा का वर्गीकरण (1931) की जनगणना संक्रिया पर आधारित है। बी.एस. गुहा (1952) ने छः प्रजातीय समूहों को निर्दिष्ट किया हैः (1) नीग्रीटो, (2) प्रोटो-ऑस्ट्रोलायड, (3) मेगोलाभ, (4) भूमध्य सागरीय, (5) पश्चिमी लघु कपाल, और (6) उदीच्य। यहाँ आपको केवल यह बताया जाएगा कि इन विभिन्न प्रकारों का अर्थ क्या है। इस मुद्दे का विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से हमें शारीरिक मानव शास्त्र की तकनीकी बातों में उलझना पड़ेगा। यहाँ हमें सिर्फ भारत में व्याप्त प्रजातीय प्रकारों की विविधताओं को जानने की आवश्यकता है।

नीग्रीटो

नीग्रीटो काले रंग वाले प्रजातीय समूह के लोग होते हैं जो अफ़्रीका में पाए जाते हैं। उनकी त्वचा का रंग काला, बाल घुंघराले एवं होंठ मोटे होते हैं। दक्षिण भारत में कादार, इरूला और पनियन जैसी कुछ जनजातियां पायी जाती हैं जिनमें नीग्रीटो जैसे विशिष्ट लक्षण हैं।

प्रोटो-ऑस्ट्रोलायड

यह प्रजाति वह नृजातीय समूह है जिसमें आस्ट्रेलिया के मूल निवासी और दक्षिणी एशियाई द्वीपों के अन्य लोग शामिल हैं। इस समूह के प्रतिनिधियों में जापान के आइनू श्रीलंका के वेड्डा, और मलेशिया के सकाई आते हैं। भारत में मध्य भारत की जनजातियां इसी प्रजातीय स्रोत की मानी जाती हैं। सिंहभूम, बिहार के हो एवं विंध्य प्रदेश के भील ऐसी ही जनजातियों के उदाहरण हैं।

मंगोलाभ प्रजाति एशिया की एक मूल प्रजातीय समूह की है। इसमें उत्तरी और पूर्वी एशिया के लोग भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए चीनी, जापानी, बर्मी, एस्कीमो और प्रायः सभी

अमेरीकी इंडियन इसी प्रजाति में आते हैं। भारत में, उत्तर पूर्वी क्षेत्र की जनजातियों में लघुकपाल वाले मंगोलाभ समूह हैं। मंगोलाभ प्रजाति से थोड़ा ही अंतर रखने वाला दूसरा प्रजातीय समूह ब्रह्मपुत्र घाटी में पाया जाता है। भारत में मंगोलाभ प्रजातीय संरचना का सबसे अच्छा उदाहरण मिकिर बोडो समूह की जनजातियां एवं अंगामी नागा है।

भूमध्य सागरीय

भूमध्य सागरीय प्रजाति समूह की शारीरिक विशेषता से जुड़ी है अर्थात् यह सफेद रंग वाली प्रजाति है। मध्यम या नाटा कद, दुबला पतला शरीर, लम्बा सिर (जिसका कापालिक नाप 75 से कम है, सिर की अधिकतम लंबाई की तुलना में अधिकतम गहराई से सौ गुना अनुपात) तथा गहरा रंग इनकी शरीरिक विशेषताएं है।

पश्चिमी लघुकपाल निम्नलिखित तीन उप समूहों में विभाजित हैः

1) **अल्पेनॉयड** – गुजरात में बनिया जाति के लोगों और बंगाल में कायस्थों में यह उप समूह देखने को मिलता है जिनकी शारीरिक विशेषताओं में चौड़ा सिर, मध्यम कद, हल्के रंग की त्वचा प्रमुख है।

2) **डिनारिक** – चौड़ा सिर, लंबी नाक, लम्बा कद, त्वचा का गहरा रंग आदि विशेषताओं से युक्त यह उप समूह बंगाल के ब्राह्मणों और कर्नाटक के अ-ब्राह्मणों में देखा जा सकता है।

3) **आर्मीनियाई तुल्य** – इनकी शारीरिक विशेषताएं डिनारिक के समान है। इनके सिर का पिछला भाग ज्यादा ही चिन्हित तथा नाक उभरी हुई और पतली होती है। बम्बई की पारसी उप प्रजाति में यह विशिष्ट लक्षण देखा जा सकता है (दास 1988ः 223)।

उदीच्य

अंत में, उदीच्य (nordic) प्रजातियां वे हैं जिनमें लंबा कद, लंबा सिर, त्वचा और बाल का रंग हल्का तथा नीली आंखे पाई जाती हैं। ये प्रजातियां यूरोप की स्कैंनिडनेवियन (डेनमार्क, स्वीडन और आइसलैंड) देशों में पाई जाती हैं। भारत में वे उत्तरी भारत के विभिन्न भागों में विशेषकर पंजाब और राजपूताना में पाई जाती हैं। चित्राल के खो, रेड काफिर और खताश इस समूह की कुछ प्रतिनिधि प्रजातियां हैं। अनुसंधान बताते हैं कि नॉर्डिक या उदीच्य प्रजाति के लोग भारत में मध्य एशिया से होते हुए शायद दक्षिण पूर्व रूस तथा दक्षिण पश्चिम साइबेरिया से आए हैं (दास 1988ः 223)। आइए अब भाषायी विविधता की चर्चा करें।

1.3.2 भाषायी विविधता

क्या आपको मालूम है कि भारत में कितनी भाषाएं बोली जाती है? जी.ए ग्रियर्सन ने इस तथ्य का पता लगाया था कि भारत में 179 भाषाएं और 544 बोलियां बोली जाती हैं, दूसरी ओर 1971 की जनगणना में 1652 भाषाएं रिपोर्ट की गई है जो मातृभाषा के रूप में बोली जाती है। आपको इस व्यापक भाषायी विविधता को देखकर आश्चर्य हुआ होगा। यह सभी भाषाएं समान रूप से भारत में सब जगहों पर नहीं बोली जाती है। इन में से कुछ जनजातीय भाषाएं कुल जनसंख्या के एक प्रतिशत है। भारतीय संविधान की आठवी सूची में 18 भाषाएं दी गई। ये हैं असमिया, बांगाली, गुजराती, हिंदी कन्नड़ कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उडिया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तेलुग तथा उर्दू। 1991 की जनगणना रिर्पोट के अनुसार इनमें से हिंदी कुल जनसंख्या के 39.85% लोगों द्वारा बोली जाती है। बांग्ला, तेलुगु तथा मराठी लगभग 8 द्वारा, तमिल तथा उर्दू क्रमशः 6. 26 तथा 5.22 द्वारा बोली जाती हैं और बाकी सारी भाषाओं को 5 से भी कम लोग बोलते

हैं (इंडिया, 2003)। स्पष्ट है कि हिंदी भाषा-भाषियों की संख्या में वृद्वि हुई है। तुलना के लिए आइए, 1971 के आँकड़ों पर एक नज़र डालें। 1971 की जनगणना के अनुसार इन 15 भाषाओं में हिन्दी हमारी कुल जनसंख्या के 29.65 प्रतिशत व्यक्तियों द्वारा बोली, जाती थी, बंगला, तेलुगु और मराठी प्रत्येक लगभग 8 प्रतिशत से भी कम जनसंख्या द्वारा बोली जाती थी। उर्पयुक्त संवैधानिक मान्यता प्राप्त भाषाएं दो भाषा परिवारों की हैं – भारतीय आर्य और द्रविड़। मलयालम, कन्नड़, तमिल और तेलुगु चार प्रमुख भाषाएं हैं। आर्य परिवार की भाषाएं भारत की कुल जनसंख्या के 75 प्रतिशत व्यक्तियों द्वारा बोली जाती है जबकि 20 प्रतिशत जनसंख्या द्रविड़ परिवार की भाषाएं बोलती हैं। इस भाषायी विविधता के होते हुए भी हमारे बीच हमेशा एक सम्पर्क भाषा रही है यद्यपि समय-समय पर इसमें भिन्निता पाई जाती रही है। प्रचीन काल में संस्कृत सम्पर्क भाषा थी, मध्यकाल में अरबी या फारसी तथा वर्तमान समय में हमारे बीच हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं का प्रयोग सम्पर्क तथा प्रशासनिक कामों के लिये किया जाता है।

1.3.3 धार्मिक विविधता

भारत अनेकानेक धर्मों की भूमि है। यहाँ हमें अलग-अलग धर्मों और मतों के अनुयायी मिलते हैं। विशेषतया इनमें हिन्दू मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्व, जैन और पारसी हैं। आपको यह मालूम है कि हिन्दू धर्म भारत का प्रमुख धर्म है। 1981 की जनगणना के अनुसार हिंदु धर्म मानने वालों का अनुपात कुल जनसंख्या का 82.64 प्रतिशत था। दूसरे स्थान पर इस्लाम धर्म था जिसके मानने वालों का प्रतिशत 11.35 था। इनके बाद ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म, बौद्व धर्म और जैन धर्म का स्थान आता था जिनके मानने वाले क्रमशः 2.43 प्रतिशत, 1.96 प्रतिशत, 0.71 प्रतिशत और 0.48 प्रतिशत थे। बहुत कम अनुयायियों वाले धर्मों में यहूदी, पारसी और बहाई धर्म आते थे।

1991 वर्ष आते-आते हिंदू धर्म के मानने वालों की संख्या में थोड़ी कमी आई है, जबकि अन्य धर्मानुयायियों की संख्या में थोड़ी सी बढ़त पाई गई है। 1991 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या के 82.41 प्रतिशत हिंदू धर्म मानते हैं। 11.67 प्रतिशत इस्लाम तथा 2.32 प्रतिशत ईसाई धर्म को मानते हैं। सिख, बौद्व तथा जैन धर्म को मानने वालों का प्रतिशत क्रमशः 1.99, 0.77 और 0.41 है। अन्य धर्मों को मानने वाले 0.43 प्रतिशत है (स्रोतः सेंसस ऑफ इंडिया 1995 सिरीज, धर्म पर पेपर 1)

इसके अतिरिक्त प्रत्येक धर्म के अन्तर्गत संप्रदाय है। उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म में कई संप्रदाय हैं जिनमें शैव, शात और वैष्णव शामिल हैं। इनके अलावा धार्मिक पुनरूद्वार आन्दोलन से भी उत्पन्न कुछ संप्रदाय हैं जैसे आर्य समाज, ब्रह्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि। विगत दिनों में राधास्वामी, साईंबाबा जैसे कुछ नए पंथ उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार इस्लाम धर्म शिया और सुन्नी में सिक्ख धर्म नामधारी और निरंकारी में, जैन धर्म दिगम्बर व श्वेतांबर में और बौद्व धर्म हीनयान व महायान में बंटे हुए हैं। हिन्दू और मुस्लिम भारत के प्रायः सभी नगरों में पाए जाते हैं, अन्य अल्पसंख्यक धर्मावलम्बियों के अपने-अपने विस्तार क्षेत्र हैं। दक्षिण भारत के तीन राज्यों केरल, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश में तथा उत्तर पूर्व के नागालैंड राज्यों में ईसाई धर्म की बहुत मज़बूत स्थिति है। सिक्ख मुख्यतः पंजाब में, बौद्व महाराष्ट्र में और जैन उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र व गुजरात में ही नही बल्कि पूरे देश के अधिकांश शहरी केन्द्रों में पाये जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) भारत में पाई जाने वाली विविधता के प्रमुख रूप कौन-कौन से हैं? अपना उत्तर एक पंक्ति में दें।

.....

.....

.....

.....

2) प्रजातीय वर्गीकरण के तीन मुख्य प्रकारों के नाम बताएं जो भारतीय जनसंख्या में अधिक प्रमुख हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) ग्रियर्सन के अनुसार भारत में कितनी भाषाएं और बोलियां बोली जाती हैं? अपना उत्तर एक पंक्ति में दें।

.....

.....

.....

.....

.....

4) भारत में पाए जाने वाले विभिन्न धर्म कौन-कौन से है? दो पंक्तियों में अपना उतर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

1.3.4 जातिगत विविधता

जैसा कि आप जानते हैं भारत जातियों का देश है। जाति शब्द का प्रयोग सामान्यतः दो अर्थों में किया जाता है, कभी-कभी वर्ण के अर्थ में और कभी जाति के अर्थ में। वर्ण से कार्य विभाजन के वर्गीकरण के आधार पर भारतीय हिन्दू समाज के चार भागों में विभाजन का पता चलता है। ये चार वर्ण हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जिनके क्रमशः शिक्षण, प्रतिरक्षा, व्यवसाय एवं दासोचित सेवा जैसे अपने-अपने विशिष्ट व्यवसाय है। वर्ण का सोपानात्मक संगठन सम्पूर्ण भारत में मान्य है। परंपरागत रूप में जाति एक वंशानुगत, अंतर्विवाही प्रस्थिति का समूह है जिसका एक विशिष्ट पारंपरिक पेशा होता हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारत में 3000 से भी अधिक जातियां हैं। पदक्रम की दृष्टि से इन्हें अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से निर्धारित किया जाता है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि जाति व्यवस्था का प्रचलन केवल हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं है। जातिगत विचारों की मान्यता मुस्लिम, ईसाई सिक्ख जैसे अन्य समुदायों में भी पाई जाती है। आपने मुस्लिमों में शेख, सैययद, मुगल, पठान की क्रमबद्वता के बारे में सुना होगा। इनके अलावा मुस्लिमों में तेली, धोबी, दर्जी आदि जैसी जातियाँ भी पाई जाती हैं। इसी प्रकार भारत में ईसाइयों के बीच भी जातिगत चेतनता कोई नई बात नहीं समझी जाती। चूंकि भारत में ईसाइयों के बीच भी जातिगत चेतनता कोई नई बात नहीं समझी जाती। चूंकि भारत में एक बड़ी संख्या में हिन्दू धर्म से धर्म परिवर्तन करके लोग ईसाई बने हैं। अतः इन ईसाइयों ने अपने बीच जाति व्यवस्था की भावना को किसी सीमा तक बनाए रखा है। सिक्खों में भी अनेक जातियां हैं जिनमें जाट सिक्ख और मज़हबी सिक्ख उप जातियां शामिल हैं। इस तथ्य को देखते हुए आप स्वयं देखें कि भारत में जातिगत-विविधता किस सीमा तक मौजूद है। विविधता के उपर्युक्त मुख्य रूपों के अलावा हमारे बीच कई अन्य प्रकार की विविधताएं भी हैं, यथा जनजातीय, ग्रामीण शहरी रहन-सहन, धार्मिक और क्षेत्रीय रीति-रिवाज पर आधारित विवाह और नातेदारी व्यवस्था, सांस्कृतिक क्षेत्रीय विविधता दर्शाने वाली एवं ऐसे ही कई अनेक अन्य रूपों वाली विविधता। इसका यह रूप आपको और स्पष्ट होगा जब इस पाठ्यक्रम के खंड 1 से 7 का अध्ययन करने के बाद आपको भारत में समाज की बहुरंगी छवि दृष्टिगत होगी।

सोचिये और करिए 1

आपकी कौन सी भाषा है और यह किस भाषायी स्रोत की है? यह पता लगाएं कि आपके परिवार से बांयी तरफ रहने वाले दस परिवारों में कौन सी भाषा/भाषाएं बोली जाती है/हैं और उन्हें भारतीय आर्य एवं द्रविड़ भाषा स्रोत के आधार पर वर्गीकृत करें। यह सभी उत्तर एक अलग पत्रक पर लिखे। अपने उत्तर की तुलना, यदि संभव हो तो, अपने अध्ययन केद्र के अन्य सहपाठियों के उत्तरों से करें। इस अभ्यास से आपको भारत में भाषायी विविधता का आसानी से बोध हो जाएगा।

1.4 भारत में एकता की कड़ी

पूर्व भाग (1.3) में हमने भारत में विविधता का चित्रण किया। परन्तु कहानी यही पूरी नही होती। इन सभी विविधताओं के तल में एकता के तत्व विद्यमान है। सामाजिक जीवन की एकरूपता में तथा एकीकरण के कुछ अवयवों में एकता मौजूद है। जनगणना कमिश्नर, हरबर्ट रिजले (1969) ने ठीक ही कहा था, ''शारीरिक और सामाजिक प्रकार, भाषा, रीति-रिवाज और धर्म की बहुविध विविधता के भीतर देखने पर आश्चर्य चकित कर देने वाली, जीवन की यह एकरूपता भी मौजूद है, जिसे आसानी से हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक देखा जा सकता है। ''आइए यहां इस भाग में अब भारतीय एकता के संबंधों की चर्चा की जाये। ये संबंध हैं भू-राजनीतिक एकता, तीर्थाटन की संस्था, समायोजन की परंपरा और परस्पर निर्भरता की परंपरा। इनमें से प्रत्येक की चर्चा इसी क्रम से की जाएगी।

1.4.1 भू-राजनीतिक एकता

भारत की एकता की पहेली इसकी भू-राजनीतिक अखंडता में देखने को मिलती है। भारत अपनी भौगोलिक एकता के लिए प्रसिद्व है। यहां एक छोर पर हिमालय है तो दूसरे छोर पर खुला समुद्र। राजनीतिक रूप से भारत एक सार्वभौमिकता सम्पन्न राष्ट्र है। इसके प्रत्येक भाग का प्रशासन एक ही संविधान तथा एक ही संसद द्वारा होता है। हम एक ही तरह की राजनीतिक संस्कृति के सहभागी हैं जिस पर प्रजातंत्र, धर्म निरपेक्षता और समाजवाद के प्रतिमानों की छाप है।

यद्यपि इसको कुछ समय पहले तक स्वीकार नही किया गया था फिर भी हमारे मनीषियों और शासकों ने भारत की भ-राजनीतिक एकता को हमेशा से ध्यान में रखा था। भारत की इस भू-राजनीतिक एकता की भावना की अभिव्यक्ति ऋृगवेद, संस्कृत साहित्य, सम्राट अशोक के शिलालेखों, बुद्धकालीन स्मारकों और विभिन्न अन्य स्रोतों में देखी जा सकती है। भारत की भू-राजनीतिक एकता के आदर्श की अभिव्यक्ति भारतवर्ष (भारत का प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त नाम), चक्रवर्ती (सम्राट) और एकचकाधिपत्य (एक शासन के अधीन) की अवधारणाओं में भी हुई है।

संचार साधनों के आधुनिकतम विकास तथा इतिहास के विविध चरणों में घटे परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भारत की भूमिगत सीमा पर बसे देशों से सीमा को लेकर चल रहे विवाद ग्रस्त मुद्दों के प्रकाश में कभी-कभी इस एकता पर आच आने का अंदेशा होता है। परंतु दूसरी ओर विवादों के संदर्भ में ही ऐसी एकता और भी दृढ़ होकर सामने आती है।

1.4.2 तीर्थांटनों की संस्था

भारत की एकता का दूसरा स्रोत मन्दिर संस्कृति है जो देव-स्थलों और पुण्य-स्थानों में सहज परिलक्षित होता है। देश के उत्तर में केदारनाथ-बद्रीनाथ से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम, पूरब में जगन्नाथपुरी से लेकर पश्चिम में द्वारिका तक धार्मिक देव-स्थल और पवित्र नदियां फैली हुई हैं। इनके साथ ही घनिष्ठता से जुड़ी पुरानी तीर्थटन संस्कृति है जिसने लोगों को देश के विभिन्न भागों में जाने के लिए हमेशा आकर्षित किया है और उनमें भू-सांस्कृतिक एकता की भावना का विकास किया है। धार्मिक एकता की अभिव्यक्ति के साथ-साथ तीर्थाटन मातृभूमि के प्रति देश प्रेम की अभिव्यक्ति का भी स्रोत रहा है तथा एक तरह से देश की पूजा ही है। इसने देश के अलग-अलग भागों में रहने वाले व्यक्तियों के बीच अन्तः क्रिया (interaction) और सांस्कृतिक बंधुता की भावना का विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसीलिए तीर्थांटन को सचमुच भारत की भू-सांस्कृतिक एकता बनाये रखने के एक साधन के रूप में देखा जा सकता है। संचार साधनों के विकास के फलस्वरूप भारत में पर्यटन का विकास हुआ है और इसने तीर्थांटन को मजबूत बनाया है। भू-सांस्कृतिक एकता को इस विकास से और भी बल मिला है।

1.4.3 समायोजन (accommodation) की परंपरा

क्या आपने भारतीय संस्कृति के संश्लेषणात्मक गुण अर्थात इसके समायोजन और सहनशीलता जैसे विशिष्ट गुणों के बारे में सुना है? इसके काफी उदाहरण मौजूद हैं। इसका पहला उदाहरण है भारत में बहुसंख्यकों द्वारा अपनाएं गए हिन्दू धर्म के लचीलेपन की विशेषता। यह सभी जानते हैं कि हिन्दू धर्म समरूप (homogeneous) धर्म नही है। यह ऐसा भी धर्म नहीं है, जिसका एक ही देवता, एक धर्मग्रंथ और एक देवालय हो। निस्संदेह इसे कई निष्ठाओं के एक संघ के रूप में माना जा सकता है। अपनी बहुदेववादी (polytheistic) विशेषता के कारण इसने ग्राम स्तर के देवी-देवताओं और जनजातीय आस्थाओं को भी अपने में स्थान दिया है।

यही कारण है कि समाजशास्त्रीयों ने मोटे तौर पर हिन्दू धर्म के दो रूप बताए। एक रूप है सुसंस्कृत और दूसरा है लोकप्रिय। धर्म का सुसंस्कृत रूप वह है जो धार्मिक ग्रंथों (वेद आदि) में मिलता है और लोकप्रिय रूप वह है जो बहुसंख्यक जनता की वास्तविक जिन्दगी में देखने को मिलता है। रॉबर्ट रेडफील्ड ने इन दोनों रूपों को क्रमशः बृहत परंपरा और लघु परंपरा कहा है। एक तरफ हमारे बीच रामायण और महाभारत की बृहत परंपरा मौजूद है तो दूसरी तरफ ग्रामीण देवता की पूजा की लघु परंपरा भी। और ये सभी परंपराएं हिन्दू

धर्म का ही अंश मानी जाती है। इससे यही पता चलता है कि हिन्दू धर्म एक उदारचेता धर्म है जो एक ग्रहणशील और आत्मसात करने वाला धर्म रहा है। यह अपनी उदारता और समायोजन के गुण के लिए प्रसिद्व रहा है।

दूसरा प्रमाण हिन्दू की धर्म-परिवर्तन के प्रति अनासक्ति में दिखाई देता है। मूलतः हिन्दू धर्म परिवर्तन कराने वाला धर्म नहीं रहा है, अर्थात् यह धर्म परिवर्तन करने वालों को हिन्दू धर्म में शामिल होने के लिए नहीं बुलाता। न ही सामान्यतः अन्य धर्मों का विरोध करता है, जो इसके अनुयायियों को धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। समायोजन और सहनशीलता के इसी गुण के कारण भारत में अनेक मतों का सह-अस्तित्व संभव हो सका है। अलग-अलग धर्मों तथा मतों को मानने वालों के सह-अस्तित्व की परंपरा भारत में सदियों से विद्यमान रही है। उदाहरण के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता को ही लें। हिन्दू और मुसलमान हमेशा ही एक-दूसरे के उत्सवों, त्योहारों, दावतों और धार्मिक उत्सवों में हिस्सा लेते रहे हैं। ऐसा उन्होंने एक-दूसरे के लिए अलग चूल्हा और उपयोग के बर्तनों की अलग व्यवस्था करके पाया है जिससे एक-दूसरे की धार्मिक अनुभूतियों और अभिवृतियों का आदर किया जा सके। इससे एक-दूसरे के सुख-दुख में शामिल होना और सहभागी होना सहज हो गया है। उन्होंने एक-दूसरे के संतों और धार्मिक पुरुषों को आदरभाव देकर भी ऐसा किया है। इस तरह, हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही एक दूसरे के संतों तथा पीरों (पवित्र आत्माओं) को आदर देते रहे हैं। यह वह भावना है जो सिक्ख, जैन, ईसाई आदि अन्य धर्मों के साथ भी सह-अस्तित्व बनाए रखने में मदद करती रही है।

सोचिए और करिए 2

1) निम्नलिखित क्षेत्रों में से प्रत्येक में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का सम्मिश्रण बताने के लिए एक उदाहरण दें।

   क) गृह-शिल्प कला

   ख) साहित्य

   ग) संगीत

   घ) धर्म

2) अपने उत्तरों को एक कागज़ पर लिखे। उनकी तुलना अपने अध्ययन केंद्र में अन्य सहपाठियों के उत्तरों से करे।

1.4.4 परस्पर निर्भरता (Interdependence) की परंपरा

हमारी संस्कृति में परस्पर निर्भरता की एक अद्भुत परंपरा है जिसमें हमें सदियों से एक साथ बांधकर रखा है। इसका एक स्वरूप यजमानी प्रथा में देखा जा सकता है। यजमानी प्रथा कार्य की दृष्टि से विभिन्न जातियों को परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर रहने की व्यवस्था है। 'यजमान' शब्द (सामान्यतः) आश्रयदाता या विशिष्ट सेवा प्राप्तकर्ता की ओर संकेत करता है। वस्तुतः यह संबंध खाद्य उत्पादन करने वाले परिवार एवं उन परिवारों के बीच का है जो उन्हें वस्तुएं और सेवाएं प्रदान करते हैं। इन्हें ही यजमानी संबंध कहा जाता है। अनुष्ठानात्मक मामलों, सामाजिक समर्थनों और आर्थिक विनिमयों से जुड़े होने के कारण यजमानी संबंध ग्रामीण जीवन में ही अधिक दृष्टिगोचर होता है क्योंकि स्थानीय सामाजिक व्यवस्था की सम्पूर्ण संरचना ही यजमानी संबंधों से जुडी रहती है। आश्रयदाता का यजमानी

संबंध उच्च जाति (जैसे ब्राह्मण, पुरोहित, जिसकी सेवाओं की उसे अनुष्ठानों में जरूरत होती है) के सदस्यों से होता है। उसे निम्न जाति के विशेषज्ञों से भी कपड़े धुलाने, बाल कटाने, कमरे और शैचालय साफ कराने, बच्चे का जन्म दिलाने आदि में उनकी सेवाओं की जरूरत होती है। जो भी व्यक्ति इन अन्तः आश्रित संबंधों से बंधे होते है वे एक-दूसरे की मदद के लिए हमेशा तत्पर रहने के गुण से युक्त होते हैं। ऐसा प्रायः निकट संबंधियों में ही पाए जाने की आशा की जाती है। परंतु यजमानी प्रथा के कारण गैर-संबंधियों में भी ऐसे संबंध विद्यमान रहते हैं। यजमानी संबंधों में प्रायः विविध प्रकार के भुगतान और आभार तथा विविध प्रकार्य शामिल होते हैं।

ग्रामीण समाजिक संरचना की अगली इकाई में भी हमने यजमानी प्रथा की चर्चा की है। यहां केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि कोई भी जाति स्वावलंबी नही होती है। यदि तरह-तरह की चीजों की जरूरत हो तो उसके लिए एक जाति दूसरी जातियों पर आश्रित होती है। एक अर्थ में, प्रत्येक जाति एक प्रकार्यात्मक समूह है जो दूसरे जाति समूहों को एक विशिष्ट सेवा प्रदान करती है। यजमानी प्रथा वह क्रियाविधि है जिसने प्रकार्यात्मक अन्तर्निर्भरता को औपचारिक एवं नियमित बना दिया है। इसके अलावा जातियां धार्मिक समुदायों की सीमा के परे भी पाई जाती हैं। हमने पहले चर्चा की है कि भारत के सभी धार्मिक समुदायों में जातिगत विचार विद्यमान है। अतः व्यावहारिक स्तर पर यजमानी संस्था विभिन्न धार्मिक समूहों के व्यक्तियों के बीच भी अंतः संबंध स्थापित करती है। इस तरह जिस प्रकार एक हिन्दू कपडों की धुलाई के लिए एक मुस्लमान धोबी पर आश्रित हो सकता है उसी प्रकार एक मुस्लिम अपने कपडों की सिलाई के लिए एक हिन्दू दर्जी पर निर्भर हो सकता है और इस परस्पर निर्भरता को संश्लिष्ट करने का प्रयास किया, जिससे दोनों प्रमुख समुदाय एक दूसरे के और अधिक निकट आ सकें। उदाहरण के लिए, सम्राट अकबर ने दोनो धर्मों की सर्वाधिक अच्छी बातों को लेकर दीन-ए-इलाही नामक एक नए धर्म को चलाया था। इस क्षेत्र में कबींर एकनाथ गुरूनानक और बीसवीं सदी में महात्मा गांधी द्वारा किया गया योगदान सर्वविदित ही है।

इसी प्रकार कला और स्थापत्य के क्षेत्र में भी हमें हिन्दू और मुस्लिम शैलियों का उपयुक्त मिश्रण मिलता है। यह एक दूसरे की संस्कृति के प्रति परस्पर प्रेम का प्रमाण नही तो और क्या है? इस विषय पर आपको सलाह है कि 'एकता एवं विविधता' शीर्षक का दृश्य (video) कार्यक्रम अपने अध्ययन केंद्र में अवश्य देखें। एकता के इन्हीं पारंपरिक संबंधों की श्रृंखला में भारतीय राज्यों ने स्वतंत्रता के बाद कालांतर में राष्ट्रीय एकता के लिए एकरूप संस्कृति मॉडल की अपेक्षा सम्मिश्रित संस्कृति मॉडल का चयन किया है। सम्मिश्रित (composite) संस्कृति मॉडल में एक अखंड राष्ट्रीय ढ़ांचे के अंदर संस्कृतियों की बहुलता के संरक्षण और विकास शामिल है। इसीलिए राष्ट्रीय अखंडता की नीति के अनुरूप धर्म निरपेक्षता के आदर्श को चयन करने का महत्व है जिसमें सभी धर्मों के प्रति समान आदर भाव की भावना है।

भारतीय एकता के उपर्युक्त विश्लेषण से हमें यह कदापि नही समझना चाहिए कि राष्ट्रीय एकता के मसले पर सदा से निर्विध्न बढ़त रही है और हमारे बीच कभी भी सांप्रदायिक या भाषा विषयक दंगे नही हुए है। न ही इससे यह भी समझना चाहिए कि विखंडनशील और अलगाववादी मनोवृतियां हमारे बीच अनुपस्थित रही है। समय-समय पर यहाँ दंगे होते रहे हैं कभी-कभी तो खतरनाक दंगे भी हुए हैं। उदाहरण के लिए बंटवारे के दिनों में सांप्रदायिक दंगों, हिन्दी थोपे जाने के विरूद्व तमिलनाडु में हुए भाषायी-दंगों और गुजरात में अनुसूचित और गैर-अनुसूचित जातियों के दंगों तथा साम्प्रदायिक दंगों को कौन भुला सकता है? परन्तु समझौता करने की यह विशेषता रही है कि विघटन की शक्तियों की तुलना में एकता के संबंध हमेशा से मजबूत बनकर उभरे हैं।

बोध प्रश्न 3

1) नीचे दिए गए स्थान में भारत में एकता के संबंधों को सूचीबद्व कीजिए।

2) निम्नलिखित की क्रियाविधियों का उल्लेख प्रत्येक के सामने दिए गए खाली स्थानों में कीजिए।

   क) भू-राजनीतिक एकता .....

   ख) भू-सांस्कृतिक एकता .....

   ग) धार्मिक समायोजन .....

   घ) सामाजिक अंतर्निर्भरता .....

3) नीचे दिए गए स्थान में बृहत् परंपरा और लघु परंपरा में अंतर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) राष्ट्रीय अखंडता के सम्मिश्रित संस्कृति मॉडल और एकरूप संस्कृति मॉडल में अंतर स्पष्ट कीजिए। अपना उत्तर चार पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 सारांश

इस इकाई में आपने विविधता का अध्ययन किया है जो तीन बातों की ओर संकेत करती है (i) समूहों के बीच का प्रारूपित अंतर, (ii) सामाजिक-सांस्कृतिक विविधतायें (iii) एकरूपता का अभाव। एकता का तात्पर्य अखंडता से है जो एकरूपता पर आधारित हो सकती है और नहीं भी। एकरूपता की यह भावना ''हम एक है'' की भावना से उपजती है। यह भावना उन संबंधों से उभरती है जो व्यक्तियों या पृथक समूहों को एक-दूसरे से जोड़कर रखती है।

आपने यह भी अध्ययन किया है कि भारत में विविधता के प्रजातीय, भाषायी, धार्मिक और जाति आधारित चार मुख्य रूप हैं।

इन सभी विविधताओं के मूल में एकता का एक अद्‌भुत अंश विद्यमान है। हमने भारत में एकता की चार कड़ियों को नोट किया जो है, भू-राजनीतिक, भू-सांस्कृतिक, धार्मिक समायोजन और कार्य-संबंधी आंतनिर्भरता। एकता की इन कड़ियों से घनिष्ठता से जुडी अखंडता की चार क्रिया विधियां है – संविधान, तीर्थाटन, अन्य धार्मिक समुदाय के सदस्यों के लिए पृथक चूल्हा तथा भोजन और रसोई में उपयोग की वस्तुओं का विधान और यजमानी व्यवस्था।

अंत में हमने नोट किया है कि भारत ने एकरूप संस्कृति के बजाय एक सम्मिश्रित संस्कृति मॉडल को अपनाया है।

1.6 संदर्भ

बेते, आंद्रे 2000. *द क्रानिकल्स ऑफ अवर टाइम.* पेंगविन बुक्स इंडियाः नई दिल्ली

देशपांडे, सतीश 2003. *क्टेम्पोरैरी इंडियाः ए सोश्योलॉजिकल व्यू.* पाइकिंगः नई दिल्ली

चौहान, बृजराज, 1989. *इंट्रोड्यूसिंग एशियन सोसाइटीजः इंडिया, ए सोशियो इकोनॉमिक प्रोफाइल,* स्टर्लिगः नई दिल्ली

मुखर्जी, राधा कमल, 1954. *द फन्डामेंटलयूनिटी ऑफ इंन्डिया,* भारतीय विद्याभवनः बम्बई, पृष्ठ संख्या 17.22

रिज़ले, एस.एच, 1969. *द पीपल ऑफ़ इन्डिया.* द्वितीय संस्करण, ओरिएन्ट बुक्सः दिल्ली

श्रीनिवास, एम.एन., 1969. *सोशल स्ट्रक्चर.* पब्लिकेशन्स डिवीजनः नई दिल्ली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग

2) ग

3) कथन क, ख, ग और घ गलत है। ड़ व च कथन सही हैं।

बोध प्रश्न 2

1) प्रजातीय, भाषायी, धार्मिक, जाति आधारित

2) मंगोलाभ, नीग्रोयड, भारोपीय

3) ग्रियर्सन के अनुसार भारत में 179 भाषाएं और 544 बोलियां बोली जाती हैं।

4) हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्व, जैन, पारसी, यहूदी तथा बहाई धर्म।

बोध प्रश्न 3

1) भू-राजनीतिक, भू-सांस्कृतिक, समायोजन की परंपरा और परस्पर निर्भरता

2) क) संविधान

   ख) तीर्थाटन

   ग) अलग रसोई एवं रसोई में इस्तेमाल के बर्तन

   घ) यजमानी प्रथा

3) बृहत् परंपरा पवित्र पुस्तकों और धर्म ग्रंथों पर आधारित होती है और समाज के संभ्रात लोगों तक ही सीमित होती है। लघु परंपरा दूसरी तरफ ग्राम आधारित एवं लोकप्रिय परंपरा है।

4) सम्मिश्रित संस्कृति मॉडल में सांस्कृतिक बहुलवाद का विधान है जबकि एकरूप संस्कृति मॉडल में सांस्कृतिक एकरूपवाद अन्तर्निहित है जो एक ही संस्कृति की संप्रभुता व्यक्त करती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 बदलता भारत*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ तथा प्रकृति

2.2.1 सामाजिक परिवर्तन के तीन आयाम

2.2.2 कुछ सम्बद्धित अवधारणाएँ

2.3 समाजशास्त्रीय सिद्धांत तथा सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाएं

2.3.1 विकास तथा परिवर्तन : अंतर्निमेय तथा अंतरसम्बंधित

2.3.2 विकास और परिवर्तन आधुनिकीकरण के रूप में

2.3.3 सामाजिक परिवर्तनः संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक

2.4 भारत में सामाजिक परिवर्तन को समझना

2.4.1 भारत में परिवर्तन के कारण

2.4.1.1 औद्योगीकरण एवं नगरीकरण

2.4.2.2 उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण (एल.पी.जी.)

2.4.2.3 संचार मीडिया, सूचना तथा सूचना प्रौद्योगिकी (आई सी टी)

2.4.2.4 सामाजिक आंदोलन

2.5 बदलता भारत : चुनौतियां तथा प्रतिक्रिया

2.5.1 ग्रामीण भारत में परिवर्तन

2.5.2 नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन

2.6 सारांश

2.7 संदर्भ

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई पढेंने के बाद आपः

- सामाजिक परिवर्तन के अर्थ तथा प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे;
- परिवर्तन के सिद्धांत तथा परिवर्तन की अवधारणाओं के अध्ययन से भारत में परिवर्तन के स्वरूप तथा प्रक्रियाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- उन कारकों का परीक्षण कर सकेंगे, जो भारतीय समाज में परिवर्तन का कारण हैं;
- भारत के समक्ष चुनौतियां तथा उसकी प्रतिक्रियाओं की विस्तृत व्याख्या कर सकेंगे; और
- संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक रूप से भारत में परिवर्तन की प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे।

*डॉ. रितु सिन्हा, जामिया मिलिया इस्लामिया और एक अंश BDP ESO-12 से अनुकूलित

2.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की पहली इकाई, 'भारत में एकता और विविधता', खंड 1 'भारत एक बहुलवादी समाज' में यह बताया गया था कि भारत विविधताओं से भरा देश है और अनगिनत विविधताओं के बावजूद एक अखण्ड भारत नजर आता है। यह इकाई परिवर्तनशील भारत से सम्बंधित है। अन्य समाजों की तरह भारत विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से प्रगति कर रहा है और बदल रहा है। गांवों में और शहरों में ऐसे बहुत लोग मिल जायेंगे जो यह कहते नहीं थकते कि बचपन में भारत का जो स्वरूप उन्होंने देखा था, अब तक उसमें बहुत परिवर्तन आ चुका है। भारतीय समाज में बदलाव की झलक कहानियों में, उपन्यासों में, मिसालों में देखने को मिलती हैं। भारत के लोगों की जीवनशैलियां, उनके व्यवहार, उनकी परम्परायें, उनके विश्वास, उनके जीवन मूल्य और यहां तक कि उनके संबंधों में भी तेजी से बदलाव आता दिख रहा है। मनुष्यों की यह प्रकृति होती है कि वे या तो तरक्की करते हैं या वे पतन की ओर चले जाते हैं। समय के साथ-साथ उनमें कुछ न कुछ बदलाव जरूर आते हैं। मनुष्यों में आने वाले ये परिवर्तन सामाजिक परिवर्तनों को रेखांकित करते हैं।

2.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ तथा प्रकृति

परिवर्तन एक व्यापक अवधारणा है। यद्यपि हमारे चारों ओर विभिन्न प्रकार के परिवर्तन सदैव होते रहते हैं, तथापि इन सभी परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन नहीं कहा जा सकता। अतः प्रति वर्ष शारीरिक वृद्धि, ऋतुओं में आने वाले बदलाव सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत नहीं आते। समाज शास्त्र में सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत सामाजिक संरचना तथा सामाजिक संबंधों में आने वाले बदलाव आते हैं। सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय एन्साइक्लोपीडिया (आई इ एस एस, 1972) सामाजिक संरचना में आने वाले बदलावों को चिन्हित करती है। मानव समाजों में क्रिया तथा अंतक्रियाओं की पद्धतियां भी इसके अंतर्गत आती हैं। परिवर्तन अनेक रूपों में आते हैं जैसे – मान्यताओं में परिवर्तन, जीवन मूल्यों में परिवर्तन, सांस्कृतिक गतिविधियों में परिवर्तन तथा सामाजिक प्रतीकों में परिवर्तन। सामाजिक संरचना तथा सामाजिक प्रणाली के काम करने के तरीकों में आने वाले परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत आते हैं। संस्थाओं, आपसी व्यवहार के तरीके, काम करने के तरीके, मनोरंजन के साधन, विश्राम करने के तरीके, भूमिकायें, सामाजिक नियम तथा अन्य सामाजिक पक्षों व गतिविधियों में समय के साथ-साथ परिवर्तन आना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। ये सभी परिवर्तन मिलकर समाज को एक नया स्वरूप प्रदान करते है।

2.2.1 सामाजिक परिवर्तन के तीन आयाम

उपर्युक्त और सामाजिक परिवर्तन की अन्य परिभाषाओं से हम देख सकते हैं कि:

1) सामाजिक परिवर्तन, सामान्य परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसका गुणवत्ता में परिवर्तन से कोई संबध नहीं है।

2) समाज में होने वाले परिवर्तन संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों से सीधे जुड़े होते हैं, इसीलिये कभी-कभी इन्हें सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन कहना बेहतर है। यद्यपि, कुछ समाजशास्त्री सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन को अलग-अलग मानते हैं। सामाजिक संरचना में आने वाले परिवर्तन (जिसमें समाज के आकार में आने वाले परिवर्तन शामिल हैं) अथवा किसी सामाजिक संस्थानों में आने वाले परिवर्तन अथवा संस्थानों के बीच संबंधों में आने वाले परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत गिने जाते हैं। कुछ समाजशास्त्री यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन से अभिप्रायः

मनुष्य के व्यवहार में आने वाले परिवर्तन से है। सांस्कृतिक क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन जैसे ज्ञान, विचार, कला, धर्म, नैतिक सिद्धान्त, जीवन मूल्य, विश्वास, प्रतीक प्रणाली आदि में आने वाले परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन के अंतर्गत आते हैं। अनेक स्थितियों में यह समझना मुश्किल हो जाता है कि कोई परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है या सांस्कृतिक परिवर्तन। उदाहरण के लिये, आधुनिक तकनीक का विकास संस्कृति का हिस्सा है, लेकिन इसके कारण आर्थिक ढांचों में भी परिवर्तन आते हैं और समाज में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं।

3) सामाजिक परिवर्तन की गति और इसकी सम्भावनायें सदा एक जैसी नहीं रहती, कभी छोटे स्तर के परिवर्तन होते हैं तो कभी बड़े परिवर्तन। परिवर्तनों के अलग-अलग चक्र होते हैं। जब प्रशासनिक संगठनों में केन्द्रीयकरण की प्रवृति रहती है, तब समाज में और तरह के परिवर्तन होते हैं तथा जब विकेन्द्रीकरण की प्रवृति आती है, तो समाज में अलग तरह के परिवर्तन होते हैं। कभी-कभी समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन भी होते हैं। जब किसी देश में सरकार को उखाड़ फेंका जाता है अथवा स्तर परिवर्तन होता है, तब समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। कभी-कभी समाज में होने वाले परिवर्तन अल्प अवधि के लिये होते हैं जैसे – लोगों को एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर जाकर बसना। कभी-कभी परिवर्तन लम्बी अवधि के लिये भी होते हैं, जैसे आर्थिक ढांचों में परिवर्तन। क्रमतर विकास और पतन, दोनों अवस्थायें सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत आती हैं। परिवर्तन में निरंतर प्रक्रियायें जैसे विशिष्टतीकरण और गैर-निरंतर प्रक्रियायें जैसे कोई तकनीकी या सामाजिक अनुसंधान जो किसी खास समयावधि में होते हैं, किसी में नहीं होते।

विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन अलग-अलग तरह के और अलग-अलग गति से होते हैं। इनसे समाज के अनेक अंगों पर प्रभाव पड़ता है। सामाजिक परिवर्तन समाज प्रणाली पर भारी असर डालते हैं। किसी समाज में औद्योगीकरण होता है तो वह समाज को प्रभावित करता है। जिस प्रकार माचिस पर तिल्ली रगड़ी जाती है तो आग जलती है, परन्तु उसका प्रभाव सीमित भी रह सकता है और यदि उससे आग लगा दी जाए तो असीमित प्रभाव में भी परिवर्तित हो सकता है।

कुछ परिवर्तन शीघ्र हो जाते हैं और कुछ को घटित होने में लम्बा समय लगता है। पश्चिम में अनेक ऐसे देश है जिनमें औद्योगीकरण की क्रिया सम्पन्न होने में कई दशक लग गये, परन्तु उनकी तुलना में विकासशील देशों में औद्योगीकरण तीव्र गति से हो रहा है। वे विकसित देशों के सहयोग व संपर्क से इस दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। वर्तमान में, अधिकतर समाजशास्त्री यह मानते हैं कि परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, इसे टाला नहीं जा सकता। जब हम सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन करते हैं, तब व्यक्तियों के अनुभवों में आने वाले परिवर्तनों की बात नहीं कर रहे हैं, हम सामाजिक संरचनाओं में, संस्थानों में तथा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन की बात कर रहे हैं।

2.2.2 कुछ सम्बद्धित अवधारणाएँ

सामाजिक परिवर्तन एक निप्रेक्ष अवधारणा है। दो अन्य संदर्भ जो सामाजिक परिवर्तन से सम्बद्धित हैं, वे हैं क्रमतर विकास (evolution) एवं प्रगति।

i) क्रमतर विकास में सततता होती है, और परिवर्तन की एक दिशा भी। यह मात्र वृद्धि नहीं है, वृद्धि से कहीं अधिक है। वृद्धि में परिवर्तन आकार और गुणवता में होता है, क्रमतर विकास में आकार के साथ-साथ संरचना में भी परिवर्तन होता है।

ii) प्रगति के अंदर परिवर्तन एक विशेष दिशा में होता है, और यह दिशा लक्ष्योंन्मुख होती है। इसमें मूल्य-निर्णय समाहित रहता है।

सभी परिवर्तन क्रमतर विकास के दायरे में नहीं आते और सभी परिवर्तन प्रगति के दायरे में भी नहीं आते। परिवर्तन की दिशा में मूल्य-निर्णय समाहित नहीं होता है। परिवार का छोटा होते जाना तथा आर्थिक संसाधनों का बढ़ते जाना एक ऐतिहासिक परिवर्तन है। सामाजिक परिवर्तन मूल्य-निरपेक्ष होता है, क्योंकि एक समाजशास्त्री सामाजिक परिवर्तन को अच्छे या बुरे की श्रेणी में नहीं रखता। उसे वांछित या अवांछित नहीं मानता। सामाजिक संरचना में आने वाले परिवर्तन का मूल्य-रहित विश्लेषण करना वास्तव में एक कठिन कार्य है।

बोध प्रश्न 1

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) सामाजिक परिवर्तन की दो पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) सामाजिक परिवर्तन की मुख्य विशेषतायें क्या हैं? चार पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्न के बीच अंतर बताइये
परिवर्तन, क्रमतर विकास तथा प्रगति। छः पंक्तियों में अन्तर दीजिये

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.3 समाजशास्त्रीय सिद्धान्त तथा सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाएं

जब हम समाजों के क्रमतर विकास और विकास की बात करते हैं, तब हमारा अभिप्राय यह बताना होता है कि सभी मनुष्य आंतरिक रूप से जुड़े होते हैं और वे अपने समाज में निरन्तर परिवर्तन को महसूस करते हैं। बिल्कुल स्पष्ट दिखता है कि मनुष्य समाजों में एक गति होती है और सभी समाज पुरानी अवस्थाओं से गुजरते हुए नई अवस्था में प्रवेश करते हैं। इस प्रक्रिया से गुजरते समय उन्हें परिवर्तन की अनेक प्रवृत्तियों का अहसास होता है। समाज सतत् परिवर्तनशील है। समाजों में वृद्धि होती है, क्षण होता है और नई नई तकनीकों का आविष्कार होता हैं, जो समाज को विकसित करता है। परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते समय समाज अपने जीवन मूल्यों, सिद्धान्तों, संस्थाओं, यहां तक कि जनसंख्या में भी अनेक प्रकार के संशोधनों का अनुभव करते हैं तथा इस अवधि में अनेक प्रकार की विभिन्नताओं से गुजरते हैं। इसीलिये, जब हम समाज का अध्ययन करते हैं, तो यह जानना जरूरी है, कि समाज में आने वाले इन परिवर्तनों की अवधारणा क्या है? समाजशास्त्र आरम्भ से ही सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों को केन्द्र में रखकर चलता है। समाजशास्त्र के प्रमुख संस्थापकों – ऑगस्त कोम्ट, हरर्बर्ट स्पैन्सर, एमिली दुर्खीम, मैक्स बेबर तथा कार्ल मार्क्स, सभी अपने-अपने तरीके से समाजशास्त्र और सामाजिक परिवर्तन में अंतर्संबंधों को रेखांकित करते हैं। आरंम्भिक समाजशास्त्रीय लेखों में विकास की शर्तें और भावनायें तथा परिवर्तन साथ-साथ चलते दिखते हैं। या तो इनके बीच में स्पष्ट अंतर स्थापित किया ही नहीं गया और यदि किया भी गया था, तो उन्हें एक दूसरे से संबंधित ही माना गया।

19वीं शताब्दी तथा 20वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में समाजशास्त्रीय सिद्धांतों ने परिवर्तन की प्रकृति, विकास की प्रवृति, क्रमतर विकास की प्रवृति तथा प्रगति की प्रवृति को अलग-अलग चिन्हित करने का प्रयास किया, परन्तु फिर भी उनकी व्याख्यायें इस प्रकार की गई कि ऐसा लगता रहा कि समाजशास्त्री इस मामलें में स्पष्ट नहीं है और इन चारों अवस्थाओं को एक ही श्रेणी में रखते नजर आते हैं। परन्तु 20वीं शताब्दी के मध्य में परिवर्तन और विकास को आधुनिकता के संदर्भ में देखा गया। आइये, अब कुछ सामाजिक विचारकों की विकास तथा सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाओं पर विचार करें।

2.3.1 विकास तथा परिवर्तन अन्तर्निमेय है तथा परस्पर संबंधित हैं

इस विषय के संदर्भ में कूम, स्पैन्सर, दुर्खीम, वेबर तथा मार्क्स के विचारों का अध्ययन अपेक्षित है।

1) **ऑगस्त कोम्ट** : सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री ऑगस्त कोम्ट ने उन सामाजिक परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया था जो औद्योगिक क्रांति के आरंभिक वर्षों में घटित हुये थे। ये परिवर्तन विकासमूलक प्रगति के प्रतीक थे। विकास की प्रक्रिया अपने अंदर परिवर्तन के अनेक चरणों को समेटे रहती है। विकास का सिद्धान्त यह बताता है कि समाज की संरचना आरम्भ में सरल होती हैं। परन्तु विकास की प्रक्रिया के दौरान अनेक परिवर्तनों से गुजरते हुए समाज की संरचना जटिल हो जाती है। कूम ने क्रमागत विकासमूलक परिवर्तनों के विचार को आगे बढ़ाया तथा उसमें प्रगतिमूलक परिवर्तनों को जोड़ते हुए बौद्धिक विकास के दौर में प्रवेश करते हुए वैज्ञानिक विकास तक पहुंचने की बात कही। कोम्ट का विचार था कि मानव मन, मानव समाज तथा मानव ज्ञान सभी विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते हैं और धीरे-धीरे समाज गैर-वैज्ञानिक पृष्ठभूमि से निकलकर वैज्ञानिक परिवेश में पहुंच जाता है।

2) **हरबर्ट स्पैन्सर :** हरबर्ट स्पैन्सर ने मानव समाज की तुलना शारीरिक संरचना से की और यह माना कि जिस प्रकार शारीरिक विकास अन्दर से होता है, उसी प्रकार सामाजिक विकास भी समाज के अन्दर से ही होता है। उनके विचार में सामाजिक संस्थायें जीवित मानव शरीर की तरह होती हैं। इसीलिये, जैसे-जैसे समाज का आकार बढ़ता है, उसकी संरचनात्मक जटिलता भी बढ़ जाती है। स्पैन्सर ने समाज और जीवधारी के बीच तथा सामाजिक विकास और आर्थिक विकास के बीच समानता को प्रतिपादित किया था।

3) **एमिल दर्खाइम :** प्रसिद्ध समाजशास्त्री दर्खाइम सामाजिक विकास को उन्नतिपरक योजना के अंतर्गत मानते हैं। वे सामाजिक अखंडता की बात कहते हैं। सामाजिक अखंडता से उनका अभिप्राय समाज के अन्दर मौजूद नैतिक विश्वासों तथा विचारों से है, जो सामाजिक जीवन में समानता को रेखांकित करते हैं। सामाजिक विकासवादी की तरह वे भी यह मानते हैं कि पूर्व औद्योगिक समाजों में जो अखंडता विद्यमान थी वह उनमें रहने वाले मनुष्यों के बीच सहमति तथा पहचाने के कारण थी, जबकि उत्तर औद्योगिक समाजों में अखंडता समाज में मौजूद अनेक प्रकार की विभिन्नताओं, मतभेदों, टकरावों को सहन करने की सहमति से प्राप्त होती है।

पूर्व औद्योगिक समाजों में श्रम विभाजन जैसी कोई चीज नहीं हुआ करती थी, जबकि आधुनिक समाजों में श्रम विभाजन न केवल अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है, बल्कि वह अत्यधिक विशिष्टताओं के साथ अनेक श्रेणियों में विभक्त होता हुआ अपने महत्व को प्रतिपादित कर रहा है। दर्खाइम का विचार था कि सामाजिक परिवर्तन समाज में नैतिक मूल्यों में आने वाले परिवर्तनों के कारण होते हैं। नैतिक अनुबंधों को वह सामाजिक अखंडता का आधार मानते हैं। दर्खाइम सामाजिक विकास की प्रक्रियाओं पर विशेष रूप से जोर देते हैं। उनके अनुसार – समाजों के कार्य करने के तरीकों में जो परिवर्तन आते हैं, वे ही अंततः सामाजिक परिवर्तन के लिये जिम्मेदार होते हैं। इनका समग्रता के साथ वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिये।

4) **मैक्स वेबर :** मैक्स वेबर ने पूंजीवाद के अध्ययन के संदर्भ में सामाजिक विकास और सामाजिक परिवर्तन पर विचार किया था। उनके अनुसार, संस्कृति (मनुष्यों के विश्वास तथा जीवन मूल्य) की विकास की प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका होती है। दर्खाइम से अलग हटकर मैक्स वेबर ने यह जानने का प्रयास किया कि धार्मिक तथा नैतिक विश्वासों में वह क्या था, जो उन समाजों की जिनकी व्यक्तिपनों की तुलनात्मक तकनीकी क्षमता रही है, वे अन्य प्रकारों से विकसित और परिवर्तित होते हैं।

5) **कार्ल मार्क्स :** कार्ल मार्क्स और फ्रीडिश एंगल्स (Friedrich Engels) दर्खाइम और मैक्स वेबर के ठीक विपरित यह तर्क देते हैं कि समाज में परिवर्तन और विकास की प्रवृति धीमी और क्रमतर विकास की नहीं हैं; अपितु यह समाज में वर्गों के हितों के द्वंद्व से चिन्हित हैं। इन्होंने समाज की उत्पादक संभावनाओं तथा इसके सदस्यों के मध्य वस्तुओं ओर सेवा के वितरण के बीच असांमजस्य की चर्चा की है। अतः इन विद्धानों के अनुसार सामाजिक परिवर्तन समाज में मौजूद विभिन्न वर्गों के बीच टकरावों के कारण घटित होते हैं और समाज में ये परिवर्तन लगातार नहीं होते ना ही ये विकास मूलक होते हैं। सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक विकास के मूल में जो शक्ति काम करती है, वह वर्ग संघर्ष से पैदा होती है।

2.3.2 विकास और परिवर्तन आधुनिकीकरण के रूप में

विकास और आधुनिकीकरण पर विल्बर्ट ई मूर (Wilberte moore) तथा डेविड मैकक्लेलेंड (David Mcclelland) के विचार अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इसी संदर्भ में आधुनिकीकरण के सिद्धांत के आलोचकों के मत जान लेना भी जरूरी है।

i) **विल्बर्ट मूर (1951)** पारम्परिक तथा पूर्व आधुनिक समाज का प्रौद्योगिकी आधारित सामाजिक संगठन में बदल जाना सामाजिक परिवर्तन का बड़ा उदाहरण है। यह प्रवृति आर्थिक रूप से संपन्न तथा राजनैतिक रूप से स्थिर प्रगतिमूलक पश्चिमी देशों में देखने को मिली है। मूर के अनुसार औद्योगीकरण के लिये सामान्य स्थितियों जिम्मेदार होती हैं, जिनमें जीवन मूल्यों में परिवर्तन, संस्थानों में परिवर्तन, संगठनों में परिवर्तन तथा प्रोत्साहन एवं उत्प्रेरण की स्थितियां विशेष रूप से शामिल हैं। आधुनिकीकरण के सिद्धान्त के अनुसार विकास की प्रक्रिया समाज के अन्दर से उत्पन्न होती है और लगभग सभी समाजों में यह प्रक्रिया एक तरह से ही काम करती है। आधुनिकतावादी विचारकों के अनुसार विकास अंततः समृद्धि तथा राजनैतिक स्थिरता लाता है।

ii) **डैविड मैकक्लेलैंन (1961)** मैक्स वेबर की तरह मैकक्लेलैंन इस बात पर ज़ोर देते हैं कि समाज व संस्कृति के अंतर्निहित घटक जैसे जीवन मूल्य तथा व्यक्तियों की महत्वाकांक्षायें उनके निर्यात को आकार प्रदान करते हैं। इस प्रकार समाज में मौजूद पिछड़ापन, गरीबी, कुपोषण आदि समस्यायें व्यापक रूप से पारम्परिक तथा गैर पारम्परिक विचारों से संबंधित होती हैं। अतः शैक्षिक योजनायें तथा तकनीकी सहयोग पिछडे हुए क्षेत्रों में रहने वाले मनुष्यों की आवश्कयताओं को पूरा करती हैं, इससे उनकी समस्याओं का समाधान होता है। उपलब्धियों के लिये यह जरूरी होता है कि मनुष्य उपलब्धियों की आवश्यकता को गहराई से महसूस करे। इससे मनुष्यों में सामाजिक परिवर्तन की सघन शक्ति का विकास होता है। यह शक्ति समाज में सामान्यतः सामाजिक परिवर्तन लाती है तथा विशेष मामले में औद्योगिक विकास की स्थिति उत्पन्न करती है। मैकक्लेलैंड के अनुसार आधुनीकीकरण अथवा विकास सांस्कृतिक मूल्यों, विचारों तथा प्रौद्योगिकियों के प्रसार से संपन्न होते हैं।

iii) **आधुनिकीकरण के सिद्धान्त की समीक्षा :** ए. जी. फ्रैंक (1967), विल्बर्ट मूर तथा डैविड मैकक्लेलैंड के आधुनिकीकरण के सिद्धान्त नीति के परिप्रेक्ष्य से स्थिति को स्पष्ट करने में अपर्याप्त हैं, क्योंकि वे विकासशील देशों की सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति की प्रक्रियाओं को परिभाषित करने में असमर्थ हैं। वे केवल पश्चिमी दुनिया के विकसित देशों के विकास मॉडल को आधार मानते हैं। ए.जी. फ्रैंक पश्चिम के विकास मॉडल को खारिज करते हुए कहते हैं कि पश्चिमी देशों की तरह आर्थिक विकास की नीतियां लागू करने और लोकतांत्रिक प्रणाली स्वीकार कर लेने के बावजूद यह संभव नहीं है कि दुनिया के सभी समाजों का विकास हो जायेगा।

बोध प्रश्न 2

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत है, यह सुनिश्चित करते हुए सही कथन के आगे 'सही' लिखिये तथा गलत कथन के आगे 'गलत' लिखिये।

अ) सभी परिवर्तन विकास के दायरे में आते हैं।

ब) कोम्ट, स्पैन्सर तथा दर्खाइम के आरम्भिक सामाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार विकास और परिवर्तन अंतर्निमये/अथवा परस्पर संबंधित हैं।

स) आधुनिकीकरण के सिद्धान्तों के अनुसार विकास का परिणाम अन्ततः आर्थिक समृद्धि तथा राजनैतिक स्थिरता होता है।

द) आधुनिक युग में विकास का अर्थ है स्वतः घटित सामाजिक परिवर्तन।

ii) कार्ल मार्क्स तथा फ्रीड्रिश एंगल्स के सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया के बारे में विचार क्या हैं? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

iii) निम्न प्रश्न के सही उत्तर पर निशान लगाइये। निम्नलिखित में से किस विद्धान ने मानव समाज की संरचना को शारीरिक संरचना के समान माना है।

अ) हरबर्ट स्पैन्सर

ब) मैक्स वेबर

स) ऐमिल दर्खाइम

द) कार्ल मार्क्स

iv) आधुनिकीकरण के सिद्धान्त की दो आलोचनाओं (कमियों) पर प्रकाश डालिये। सात पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2.3.3 सामाजिक परिवर्तन : संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक

उपर्युक्त शब्दों की सीमाओं को देखते हुये एक अधिक तटस्थ शब्द 'सामाजिक परिवर्तन' का विस्तृत प्रयोग किया जाता है, किसी भी समाज में ढांचे और क्रिया में रूपांतरण के लिये। सामाजिक परिवर्तन में सांस्कृतिक परिवर्तन अंतनिर्हित है। सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत राजनैतिक परिवर्तन और आर्थिक परिवर्तन जैसे कुछ परिवर्तनों को छोड़कर बाकी सभी तरह के परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत आते हैं। लेकिन समाजशास्त्रीयों ने एक निश्चित परिभाषा देने के लिये संघर्ष किया। सामाजिक परिवर्तन का मतलब है सामाजिक संस्थानों, लोगों के व्यवहारों, सामाजिक संबंधों, समुदायों तथा समाजों के स्वरूपों और प्रवृतियों में संशोधन अथवा सुधार। इसके अंतर्गत संरचनागत परिवर्तन आते हैं। अर्थात्

समाज के संस्थानों तथा समाज की संरचना में व्यापक रूप से परिवर्तन/संरचना में परिवर्तन सीमित हो सकता है, संपूर्णतः नहीं।

समाजशास्त्री 'बटोमोर' (Bottomore) (1986: 297) के अनुसार सामाजिक परिवर्तन समाज की संरचना में होने वाला व्यापक परिवर्तन है, जिसमें समाज का आकार बदल जाता है। सामाजिक संस्थानों के स्वरूप बदल जाते हैं। संस्थाओं तथा संस्थानों के बीच आपसी संबंध बदल जाते हैं।

डेविस (1981 : 622) समाज की संरचना तथा समाज के कार्यों में परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा देते हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, प्रौद्योगिक तथा पर्यावरण संबंधी भी। सांस्कृतिक परिवर्तन का अर्थ होता है सांस्कृतिक परिदृश्य में आने वाले बदलाव - जैसे सांस्कृतिक मूल्यों, विश्वासों, जीवन मूल्यों, दृष्टिकोणों, धार्मिक रूझानों, सामाजिक तथा आर्थिक संगठनों, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा मानव निर्मित किसी भी चीज़ में आने वाले परिवर्तन (ह्यूब, 1996: 13)। सांस्कृतिक परिवर्तन अधिक व्यापक प्रकार का परिवर्तन होता है। इसके अंतर्गत प्राकृतिक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन भी समाहित होते हैं।

2.4 भारत में सामाजिक परिवर्तन की स्थिति

'भारत बदल रहा है, इस बात का अहसास भारतीय समाज में आने वाले अंतरों को रेखांकित करने से होता है। भारतीय समाज में परिवर्तन के दोनों तरह के लक्षण दिखाई देते हैं। कुछ परिवर्तन अस्थाई हैं, कुछ निरंतर तथा स्थायी रूप से हो रहे हैं। समकालीन भारतीय समाज पहले की तुलना में बहुत बदला सा लग रहा है। भारत में परिवर्तन लगातार होते जा रहे हैं। यह समझने के लिए भारत के सांस्कृतिक व संरचनात्मक स्वरूप को जानना जरूरी है, और यह पता लगाया जाना भी जरूरी है कि इसके पीछे कौन से कारण काम कर रहे हैं।

2.4.1 भारत में परिवर्तन के कारण

भारतीय समाज में जिस तरह लगातार परिवर्तन होते जा रहे हैं, उन्हें समझने के लिए यह जान लेना जरूरी है कि उसके कौन-कौन से कारण मौजूद हैं। भारत अब तक दुनिया में जो सबसे अलग देश माना जाता रहा है, उसकी दो बड़ी वजहें हैं - एक, भारत का परम्परागत समाज तथा दूसरी, जातिवाद। अब भारत में सांस्कृतिक तथा संरचनागत परिवर्तन तेजी से हो रहे हैं। इनके पीछे अनेक कारण मौजूद हैं।

समकालीन भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था वाला देश है, जिसमें तेजी से परम्परागत समाज के स्थापित मूल्य बदलते दिख रहे हैं, क्योंकि भारत परम्परागत सामाजिक संरचना से औद्योगिक सामाजिक संरचना की ओर तेज़ी से बढ़ रहा है। भारत में नई-नई तकनीकों का विकास हो रहा हैं, नये-नये उपकरणों का निर्माण हो रहा है तथा भारत के लोग विज्ञान का अध्ययन करते हुए अपनी सोच में तर्कशीलता को समाहित करते जा रहे हैं। भारत के लोग यह स्पष्ट महसूस कर रहे हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था बदलती जा रही है, भारत में औद्योगीकरण की गति निरन्तर तेज होती जा रही है। नगरों का विकास और विस्तार एक राष्ट्रव्यापी प्रक्रिया है और पूरा देश शेष दुनिया के संपर्क में तेजी से आता जा रहा है। वे सांस्कृतिक तथा संरचनात्मक रूप से बदलते जा रहे हैं। आइये, इस प्रक्रिया को समझने का प्रयास करें।

भारत में जो आज हो रहा है, उसकी जड़ों में जो कारण व्यापक रूप से मौजूद है, वह है भारत का अंग्रेजों के अधीन होना। उपनिवेशीकरण की यह विशेषता होती है कि किसी देश पर शासन करने वाले लोग उस देश को जीतने के बाद वहां के लोगों और संसाधनों पर पूरी तरह से कब्जा जमा लेते हैं और उनके संसाधनों का तथा उनका यथासंभव शोषण करते हैं। अंग्रेजों ने जब भारत पर कब्जा जमा लिया, तो उन्होंने वही सब करना शुरू कर दिया जो उपनिवेशक के शासक करते हैं। उन्होंने भारत में वही तकनीक उतारी जो ब्रिटेन में मौजूद थी, वही कानून व्यवस्था और वही प्रशासन प्रणाली भारत में लागू की जो ब्रिटेन में मौजूद थी। जैसे ही भारत में ब्रिटेन की तर्ज पर नई प्रणालियां लागू की गई, हमारे देश का राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढांचा बदलना शुरू हो गया। असल में, किसी देश में उपनविनेशवाद का जितना और जैसा प्रभाव पड़ता है, उसे ठीक से समझा जाना उसके बारे में कल्पना करना प्रायः असंभव है। उपनिवेशीकरण के कारण भारत में जो संरचनात्मक परिवर्तन शुरू हुए, उससे भारतीय समाज के सांस्कृतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आने लगा, सांस्कृतिक ढांचा बदलने लगा और उस दौर में शुरू हुई बदलाव की उस प्रक्रिया को आज भी हम महसूस कर सकते हैं। भारत के उपनिवेशीकरण के कारण देश में जो दो बड़े परिवर्तन हुए, और जिनकी अपेक्षा नहीं थी, वे आधुनिकीकरण तथा धर्मनिरपेक्षकरण थे। जो मौजूदा सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं, उनको समझने के लिये इन दोनों घटकों का गहराई से अध्ययन करना पड़ेगा।

भारत में पश्चिमीकरण की लहर का आरम्भ होना तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली का लागू होना, इन दोनों कारणों ने औपनिवेशिक काल में भारत में आधुनिकीकरण की नींव डाली। यदि हम एम.एन. श्रीनिवास की ''पश्चिमीकरण (westernisation) की अवधारणा का अध्ययन करें तो पता लगता है कि भारत पर पश्चिमी जगत का घुमाव दो स्तरों पर पड़ा– 1. भारत में पश्चिमी शिक्षा के विस्तार के कारण देश का बौद्धिक विकास हुआ, भारत की सोच में उदारता आई तथा भारत में मध्यम वर्ग का उदय हुआ और यहां के लोग अंग्रेजों की तरह कपड़े पहनने लगे, उनके खाने-पीने के ढंग को अपनाने लगे तथा उनके सांस्कृतिक मूल्यों को अपने जीवन में ढालने लगे। भारत पर औपनिवेशीकरण का प्रभाव पड़ा तो भारत के लोगों की सोच में अनेक बदलाव व्यापक रूप से आने शुरू हो गये। जैसे – सामूहिकता और साझेदारी के स्थान पर व्यक्तिगतता की भावना आने लगी, राष्ट्रीयता की भावना आने लगी, स्वतंत्रता के विचार जन्म लेने लगे और भारतीय लोगों की सोच में तर्कशीलता प्रवेश करने लगी और वे वस्तुगत रूप से सोचने लगे। ऐसे विचारों और सिद्धान्तों का किसी समाज में उतरते जाना ही आधुनिकीकरण कहलाता है। (आधुनिकीरण का सीधा-सादा अर्थ है ''एक ऐसी क्रांतिकारी प्रक्रिया जो परम्परागत तथा अर्ध परम्परागत व्यवस्था को एक ऐसी तकनीकी तथा संवद्ध सामाजिक ढांचे में बदल डाले जिसके मूल्य, नियम तथा मंशा वैसी हो जैसा हम चाहते हैं'') (दूबे 1996 : 112) रूडॉल्फ तथा रूडॉल्फ (Rudolph and Rudolph) के शब्दों में ''आधुनिकता का अर्थ है – ''संकीर्णता तथा विवेकहीनता (भावुकता) के स्थान पर वैश्विक तथा वैज्ञानिक चिन्तन को स्वीकार करते जाना''। आधुनिकता के साथ-साथ नई तकनीक का विस्तार होता है और लोग अपनी पहचान जन्म के आधार पर बनाये रखना छोड़ने लगते हैं तथा उस रूप में अपनी पहचान बनाने लगते हैं जिस रूप में वे चाहते हैं।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है किसी धार्मिक सीमा में कैद न रहना। जब व्यक्ति की सोच आधुनिक हो जाती है तो वह धैर्य के आधार पर सोचना बन्द करने लगता है और तर्क के आधार पर सोचना आरंम्भ कर देता है। धार्मिक सीमाओं की और उससे पड़ने वाले प्रभावों को एक ओर फेंकता हुआ वह धर्म तथस्ठ होता जाता है। आधुनिकवादी विचारकों का विश्वास था कि शिक्षा, तार्किक सोच तथा वैज्ञानिकता का प्रभाव मनुष्य को उसकी धार्मिक

सीमाओं से मुक्त कर देगा और सम्पूर्ण मानव समाज वैज्ञानिक ढंग से सोचने लग जायेगा। भारतीय संदर्भ में यह बात सही साबित हुई।

2.4.1.1 औद्योगीकरण तथा नगरीकरण

आजादी के बाद भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेज हुई जिसने देश की अर्थव्यवस्था को विकास की बुलंदियों तक पहुंचाने की दिशा में कदम उठाया। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप औद्योगिक समाज का विकास हुआ। देश में जब औद्योगिक इकाइयाँ काम करने लगी, तो खेती पर निर्भर लोगों में से बड़ी संख्या में लोग इन इकाइयों से जुड़ने लगे। औद्योगिक समाज को समाजशास्त्र की दृष्टि से बेहतर समाज माना जाने लगा। औद्योगिक समाज में श्रमविभाजन के आधार पर मनुष्य तकनीकी तथा प्राकृतिक विकास में लगे थे। नई-नई तकनीकों के विस्तार तथा औद्योगीकरण के द्वारा समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई थी। उद्योग धन्धों से जुड़ा यह समाज ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले खेती किसानी पर निर्भर समाज की तुलना में अधिक प्रगतिशील तथा संपन्न था।

औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से नगरीकरण की प्रक्रिया सीधी जुड़ी है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत नगरों का तीव्रता से विस्तार होने लगा और ग्रामीण क्षेत्रों से काम की तलाश में बड़ी संख्या में लोग शहर आने लगे। यहां उन्हें उत्पादन से जुड़े कामों में लगना था और औद्योगिक विकास में योगदाना देना था। ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरों में शिक्षा की व्यवस्था अच्छी होती है तथा आर्थिक गतिविधियां तेज होती हैं। क्योंकि नगरों में एक खास प्रकार की संस्कृति होती है। आमदनी के अच्छे साधन जुटाये जा सकते हैं। नगरों में राजनीति का एक स्तरीय ढांचा होता है तथा नौकरशाही और आधुनिकतम प्रशासनिक प्रणाली होती है। नगरीकरण की प्रक्रिया बड़ा सांस्कृतिक परिवर्तन लाती हैं। गांवों में पारम्परिक तरीके से जीने वाले लोग शहरों में आकर आधुनिक हो जाते हैं और शहरी संस्कृति से जुड़ जाते हैं। उनमें अधिक से अधिक पैसा कमाने और अपना आर्थिक स्तर ऊपर उठाने की लगन पैदा हो जाती है। इससे उनके व्यवहार में बड़ा परिवर्तन आ जाता है, उनकी सोच बदल जाती है, उनके संबंधों के तरीके बदल जाते हैं, सामाजिक संस्थानों के प्रति उनका दृष्टिकोण बदल जाता है।

भारत में उपनिवेशीकरण का नतीजा यह हुआ कि नगरों में जो पुरानी पद्धतियों के संस्थान थे, परम्परा केन्द्र थे वे सब बदल गये, उनका नवीनीकरण हो गया और उनसे जुड़े लोगों की सोच औद्योगिकरण के प्रभाव में आकर पूरी तरह बदल गई।

2.4.1.2 उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण

उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण परिवर्तन की वे प्रविधियां हैं जिनके बारे में स्कूलों में जानकारी दी जाती है। इनका लोकप्रिय नाम एल पी जी (Liberalisation, Privatisation and Globalisation) है। इन प्रविधियों ने समाज को पूरी तरह बदल डाला और आर्थिक विकास तथा आर्थिक सुधारों की ओर भारत तेज गति से आगे बढ़ा। भारत में नई अर्थव्यवस्था के आगे बढ़ने का पहला चरण उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के साथ शुरू हुआ। उदारीकरण एक नीतिगत परिवर्तन है, जिसके अंतर्गत समस्त आर्थिक नीतियां बदल जाती हैं। जो लोग आर्थिक विकास में भागेदारी करना चाहते हैं, उन्हें सुविधायें दी जाती हैं तथा देश और विदेश में उनके औद्योगिक तथा व्यापार संबंधी कार्यों को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप निजीकरण तथा वैश्वीकरण की गति तेज हो जाती है। देश की अर्थव्यवस्था विश्व बाजार के लिये खोल दी जाती है, विदेशों से आकर काम करने वाली कंपनियों को सहयोग दिया जाता है, तथा सुविधायें प्रदान की जाती हैं। जिससे वे देश की अर्थव्यवस्था के विकास में खुलकर भागेदारी कर सके।

1990 में भारत की अर्थव्यवस्था चरमरा गई थी और लगभग ढहने के कगार पर थी। तत्कालीन भारत सरकार ने 1991 में आर्थिक सुधार लाने के लिये नई आर्थिक नीतियों की घोषणा की। जिनके अंतर्गत निजी कंपनियों के लिये बाज़ार खोल दिये गये। शिक्षा, ऊर्जा, नागरिक उड्डयन सहित अनेक विभागों में निवेश करने के लिये विदेशी कंपनियों को न्योता दिया गया और अनेक सार्वजनिक संस्थानों में भी निजी कंपनियों की भागेदारी स्वीकार कर ली गई। इससे देश में निजीकरण के युग का आंरभ हो गया, आर्थिक व्यवस्था से जुड़े अनेक क्षेत्रों में स्वदेशी और विदेशी निजी कंपनियां काम करने लगीं।

वैश्वीकरण का अर्थ है एक देश में पैदा होने वाली चीजों का दूसरे देश में भेजने और बेचने की खुली सुविधायें प्राप्त होना। सेवायें, योजनायें, सूचनायें, प्रौद्योगिकियां तथा लोग एक देश से निकल कर दूसरे देशों में जा सकें और दूसरे देशों से उसी प्रकार एक देश में आ सकें। वैश्विक स्तर पर कार्य उत्पादन एवं सेवाओं के आदान प्रदान को वैश्वीकरण की संज्ञा दी जाती हैं। वैश्वीकरण के प्रथम चरण में विकसित क्षेत्रों ने अपने यहां उत्पादित होने वाली वस्तुओं को तीसरी दुनियां के देशों के बाज़ारों में पहुंचाना आरंभ किया, और धीरे-धीरे तीसरी दुनियां के देश, अर्थात् विकासशील देशों को भी अपने यहां उत्पादित वस्तुओं को विकसित देशों में पहुंचाने और बेचने की अनुमति मिली। इस प्रकार पूरे विश्व में किसी भी देश का उत्पादन अन्य किसी देश में पहुंचाने की खुली व्यवस्था स्वीकार कर ली गई और इस प्रकार विश्व में वैश्वीकरण का अवतरण हुआ।

एल्ब्रो (1990 : 45) के अनुसार ''वैश्वीकरण उन प्रविधियों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है जो एक देश के लोगों को दुनियां के अन्य देशों से उद्योग व्यापार के जरिये जुड़ने की खुली आजादी देती हैं, और अन्ततः विभिन्न देशों में बसा मानव समाज एक विश्व समाज बन जाता है''। वैश्वीकरण के द्वारा विभिन्न संस्कृतियां, अर्थव्यवस्थायें, देश तथा लोग अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक दूसरे पर निर्भर होने लग जाते हैं। एक देश के लोग अन्य देशों में जाकर काम करने लगते हैं और वहां की नागरिकता भी प्रदान करने लगते हैं। गिडेन्स (1990 : 65) के अनुसार ''वैश्वीकरण विश्व स्तर पर सामाजिक संबंधों का घनीभूत होते जाना हैं। इससे दूर स्थित देशों के लोग एक दूसरे के निकट आने लग जाते हैं और उन्हें अपनी सी लगने लगती हैं''। वैश्वीकरण विभिन्न आयामों में होता है जैसे - आर्थिक, सांस्कृतक तथा राजनैतिक। आर्थिक तथा वित्तीय आयामों में उदारीकरण और निजीकरण की प्रक्रिया तेज हो जाती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विकास होता है तथा एक देश की कंपनियां अनेक देशों में काम करने लग जाती हैं और व्यक्ति विश्व स्तर पर लाभ कमाने के अवसर प्राप्त कर सकता है। यह बदलाव की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनन्त संभावनायें अंतनिर्हित हैं।

2.4.1.3 संचार मीडिया तथा सूचना प्रौद्योगिकी

ब्रिटिश शासन काल में भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का इतना विकास नहीं हो पाया था। उस समय केवल टेलीग्राफ, डाक सेवायें, टेलीफोन, रेडियों, सिनेमा तथा प्रिंटिंग तकनीक का ही विकास हुआ था। लेकिन इन सभी प्रौद्योगिकियों के विकास में भारत में एक नई चेतना का विकास किया और इन संसाधनों का उपयोग भारत के लोगों ने ब्रिटिश शासन से आजादी प्राप्त करने के लिये किया। भारत में टेलीविज़न आजादी के आरंभिक दशकों में आया और सरकार को उस पर सीधा अधिकार प्राप्त हुआ, जिसे सरकार ने प्रबल, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। बाद में कम्प्यूटर प्रणाली का विकास हुआ और मोबाइल फोन भी चलन में आने लगा। इससे सोशल मीडिया तथा डिजिटल संपर्क तेज़ी से बढ़ने लगा, उपग्रह तथा केबल के माध्यम से सूचना एवं संपर्क प्रौद्योगिकी का व्यापक रूप से प्रसार हुआ। सूचना प्रौद्योगिकी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर

पर लोगों को परस्पर जोड़ने में कामयाब हुई। ज्ञान एवं सूचना का वैश्विक स्तर पर आदान प्रदान तीव्र गति से होने लगा। बहुराष्ट्रीय स्तर पर सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काम करने वाली बड़ी-बड़ी हस्तियां जैसे - मरडॉक, न्यूज़ कॉर्प ने भारत तथा समूचे दक्षिणी विश्व को अपनी सेवाओं से लगभग बदल ही डाला। संचार मीडिया तथा सूचना प्रौद्योगिकी के दुनिया भर में विस्तार होने से सारी दुनिया के समाजों पर विकसित देशों की संस्कृति और सोच पर भारी प्रभाव पड़ा। 'मैटोस', का कहना है कि संचार मीडिया के कारण दुनियां के अन्य देशों पर पश्चिमी देशों का वैचारिक साम्राज्य स्थापित हो गया। पश्चिमी समाज के अनेक सांस्कृतिक मूल्य जैसे व्यक्तिवाद तथा पूंजीवाद, आत्म केंद्रित सोच का पूर्वी देशों के समाजों पर भारी प्रभाव पड़ा। निष्कर्ष यह है कि संचार मीडिया ने भारत के आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं। संचार मीडिया, सूचना प्रौद्योगिकी तथा सूचना के विभिन्न स्त्रोतों ने भारत को एक आधुनिक समाज बनाने में तथा भारत की अर्थव्यवस्था को विकास की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसने भारतीय लोगों के निजी जीवनों को भी बदला है और सामाजिक जीवनों को भी।

2.4.1.4 सामाजिक आंदोलन

सामाजिक आंदोलनों का भारतीय समाज पर बहुआयामी प्रभाव पड़ा। एक प्रभाव उस समय पड़ा था जब आंदोलन आरम्भ हुए और एक प्रभाव अब भी महसूस किया जा सकता है। सामाजिक आंदोलन ऐसे हालात में प्रारंभ हुये थे जिन्हें सहन करना मुश्किल हो रहा था। इनका उद्देश्य उन हालातों को बदल डालना था। मनुष्यों का सामूहिक अभियान जो किसी खास विचार से आंदोलित होता है तथा किसी खास उद्देश्य प्राप्त करने के लिए, समाज तथा व्यवस्था में खास परिवर्तन लाने के लिए चलाया, सामूहिक रूप से चलाया जाता है, उसे सामाजिक आंदोलन कहते हैं। उपनिवेश काल में अनेक सामाजिक आंदोलनों का जन्म हुआ। आंदोलनकारी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे। वे पश्चिमी संस्कृति को अपने ऊपर थोपे जाना सहन नहीं कर पा रहे थे, इसलिए आंदोलन हुआ। वे ब्रिटिश प्रशासन की दमन क्रांति नीतियों से परेशान थे, इसलिए आंदोलन हुआ। एक खास समुदाय के लोग अपनी सामुदायिक पहचान बनाये रखना चाहते थे, अपने अधिकारी को पाना चाहते थे, इसलिए वे आंदोलन में उतरे। भारत के लोग शोषणकारी एवं दमनकारी, भारतीय संपदा को ब्रिटेन में ले जाते रहने वाले ब्रिटिश शासन से तंग आ चुके थे, इसलिए वे सब सचेत हुए, संगठित हुये और योजना बनाकर, ब्रिटिश हुकूमत से आजादी प्राप्त करने के उद्देश्य से स्वाधीनता आंदोलन में उतरे।

आजादी से पहले भारत में अनेक ऐसी कुप्रथाएं व समस्यायें थीं, जो समाज को धुन की तरह अंदर-अंदर ही खोखला किये जा रही थीं। कहीं अन्याय हो रहा था, किन्हीं अधिकारों का हनन किया जा रहा था तथा सामाजिक तथा आर्थिक असमानता विद्यमान थी। स्त्रियों तथा दलितों व पिछड़ों की सामाजिक उपेक्षा हो रही थी। अनेक सांस्कृतिक व सामाजिक समस्या उत्पन्न हो गई थीं। अनेक प्रकार की विसंगतियाँ व असहमतियाँ जन्म ले चुकी थीं। इन सबने मिलकर ऐसे गुबार पैदा किये जो आंदोलनों में बदले गये।

इस अवधि में जो आंदोलन समाज व व्यवस्था को उद्धेलित करने में सफल हुये, उनमें भक्ति आंदोलन प्रमुख था। भक्ति सम्बंधी इष्ट तथा ईश्वर सम्बंधी आस्था की विसंगतियों के फलस्वरूप इस आंदोलन का जन्म हुआ, जो लम्बे समय तक चला और इसने समाज के विभिन्न आयामों कला, साहित्य तथा पूजा-पद्धतियों पर ज़बरदस्त प्रभाव डाला।

सती करने के नाम पर स्त्री को उसने पति के साथ चिता में जीवित जला दिये जाने की कुप्रथा के विरुद्ध सती आंदोलन हुआ। विधवा स्त्री के साथ विवाह करने तथा विधवा को

दूसरी बार शादी करने के अधिकार को लेकर विधवा विवाह आंदोलन का जन्म हुआ। उत्तर भारत में किसानों के ज़मीनों पर अधिकार तथा मालिकाना हकों को लेकर किसानों में जो अफरातफरी मची थी उसने उत्तर भारत में किसान आंदोलन का सूत्रपात किया।

राव (2000) के अनुसार, भारत में ब्रिटिश शासन काल में हुये तथा उसके आस-पास हुये आंदोलनों को उनके उद्देश्यों की दृष्टि से श्रेणीबद्ध किया जाये तो, इनमें से कुछ आंदोलन सुधारवादी थे, कुछ समाज में आमूल-चूल परिवर्तन लाने के उद्देश्य से चलाये गये परिवर्तनवादी थे तथा कुछ आंदोलन क्रांतिकारी थे। शाह (2008 : 30) इन आंदोलनों को सामाजिक व आर्थिक विशेषताओं के आधार पर तथा निहित समस्याओं के आधार पर वर्गीकृत करते हैं, और उन्हें किसान आंदोलन, जनजातिय आंदोलन, दलित आंदोलन, पिछड़ी जाति-आंदोलन, महिला आंदोलन, छात्र आंदोलन, मजदूर आंदोलन, तथा मध्यवर्गीय आंदोलन आदि नाम देते हैं।

बोध प्रश्न 3

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) एक पंक्ति में 'आधुनिकीकरण' की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ii) क्या पश्चिमी सोच-प्रणालियों को अपनाना तथा उनकी जीवन शैली को अपनाना पश्चिमीकरण कहलाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

iii) एल पी जी का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.5 बदलता भारत : चुनौतियां व प्रतिक्रिया

यह सत्य सबको निर्विवाद होना चाहिए की कि कोई भी समाज सदा एक जैसा नहीं रह सकता, उसे बदलना होता है, वह बदलता है और सदा बदलता रहता है। यदि भारत की संरचना व उसके विविधता भरे स्वरूप का अध्ययन करें, तो आप समझ जायेंगे कि भारत जैसे देश का समाज किसी भी दौर में अपरिवर्तनीय नहीं रह सकता।

समकालीन भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था है जिसमें हमेशा गति विद्यमान रहती है, क्योंकि अनेक चीज़ें वक्त के साथ बदलती हैं। समाज का जो परंपरागत ढांचा है, वह आर्थिक विकास के अनुकूल है ही नहीं, अतः आर्थिक विकास के लिए उसे बदलना ही होगा। भारत में आधुनिकीकरण हो रहा है क्योंकि औद्योगिक विकास तीव्र गति से हो रहा है, नई-नई तकनीकों का आविष्कार हो रहा है, नये-नये उपकरणों का निर्माण हो रहा है। नई-नई जानकारियों का जन्म हो रहा है। भारतीय समाज इस समय उद्योगीकरण, नगरीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर से एक साथ गुजर रहा है। इन क्षेत्रों में अनेक प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं और अनेक प्रकार के परिवर्तन इनके गर्भ में छिपे पड़े हैं, इसीलिये यह स्वाभाविक है कि ये देश सांस्कृतिक तथा सरंचनात्मक रूप से लगातार तेज गति से तब तक अवश्य बदलता रहेगा जब तक ये विकसित राष्ट्र और विकास समाज के अपने अन्तर्निहित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर लेता।

भारत उपनिवेशीय शासन को झेलने वाला एक ऐसा देश है, जिसे लम्बे समय तक उस शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिये स्वाधीनता आंदोलन चलाना पड़ा। परिवर्तन की आवश्यकता भारतीय समाज में उस समय अन्तर्निहित थी जब भारत को आजादी मिली।

सिंह (1966 :1) का तर्क है कि भारत में जो सामाजिक बदलाव का दौर चला, वह एक खास सोच से प्रेरित था। उसका खास लक्ष्य था, अतः यह केवल कुछ परिवर्तन के बाद रूक नहीं सकता था। इसे तो अपना लक्ष्य प्राप्त करना था, इसलिये इसमें गति विद्यमान रही। अब जो भारत में परिवर्तन हो रहा है, वह विकास और क्रमतर विकास का पर्याय है।

आज़ादी के बाद से ही आर्थिक विकास की आवश्यकता महसूस की जाने लगी थी। लोगों में सफलता प्राप्त करने और जीवन में तरक्की करने की अभिलाषायें जाग उठी थीं, इसीलिये देश में शिक्षा का विस्तार हुआ और यह मान कर चला गया कि वैज्ञानिक विधि से चीज़ों का अध्ययन करते हुए देश सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों के दौर से गुजरेगा। परिवर्तन की आकांक्षा, आवश्यकता तथा बदलाव की होड़ ने पश्चिमी तर्ज पर आधुनिकीकरण तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मॉडल को अपना लिया। यही वजह है कि जो परिवर्तन भारतीय समाज में हो रहे हैं, वे काफी जटिल हैं और अनेक प्रकार की चुनौती से भरे हैं। आइये इनका सूक्ष्मता से परीक्षण करें।

आज़ादी के बाद जब भारत का संविधान बना तो उस पर पश्चिम की उदारवादी सोच लोकतांत्रिक ढांचे की परिकल्पना, सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीयता का व्यापक प्रभाव पड़ा। भारत के संविधान निर्माताओं ने सामाजिक परिवर्तन द्वारा सामाजिक न्याय स्थापित करने का संकल्प लिया था और यह संकल्प भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा पूरा होना था। संविधान निर्माता यह जानते थे कि भारत एक बहुधर्मी और बहुआयामी सांस्कृतिक आयामों वाला देश है। विभिन्नताओं से भरे देश को एकता के सूत्र में बांधे रखने के लिये लोकतांत्रिक पद्धति का चुनाव किया गया। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने यह संकल्प लिया था कि भारत एक विकसित औद्योगिक देश बनेगा तथा समाज में मौजूद असमानता को दूर करते हुए समाज के सभी वर्गों के साथ न्याय करेगा। भारत में जो परिवर्तन हुए वे

दोनों प्रकार के थे, नियमित परिवर्तन तथा अनियमित परिवर्तन। आइये इस सत्य पर विचार करें कि आजादी के बाद से भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में तथा नगरीय क्षेत्रों में क्या-क्या हुए हैं।

2.5.1 ग्रामीण भारत में परिवर्तन

आजादी के बाद से भारतीय समाज तेजी से विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों के दौर से गुजरा है। भारतीय सरकार ने आरंभ में कृषि में सुधार तथा बहुआयामी विकास को अपना लक्ष्य बनाया था। सुधारों के फल-स्वरूप बंधुवा मजदूरी प्रथा समाप्त हुई, मज़दूरों को वेतन दिये जाने की पद्धतियों में बदलाव हुआ। कृषि मज़दूरों के वेतनमानों में वृद्धि हुई। ब्रैमन (1974) के अनुसार, कृषि व ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से लागू होने से पारम्परिक शोषण का अन्त हुआ। अब गांव तेज़ी से छोटे शहरों में बदलते जा रहे हैं और शहर महानगरों में बदलते जा रहे हैं। वैश्वीकरण का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में भी अनेक प्रकार के बदलाव ला रहा हैं। अब अपेक्षित समुदायों जैसी कोई चीज गांवों में नहीं रह गई है, पारम्परिक व्यवसाय तथा जीविकोपार्जन के उपाय अब कम अपनाये जाते हैं। व्यावसीयकरण की गति बढ़ते जाने से अब गांवों तथा नगरों की अर्थव्यवस्थायें नगरों से जुड़ गई हैं। शहरीकरण के बढ़ते जाने तथा काम की तलाश में गांव के लोगों का महानगरों में पहुंचने से ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवसायों में विविधता आ गई है। कुछ लोग फसलों के बोये जाने और फसलों के कटान के वक्त गांवों में काम करते हैं और बाद में शहरों में चले जाते हैं। पढ़े-लिखे संम्रांत वर्ग का अब ग्रामीण मजदूरों पर नियंत्रण नहीं रह गया है। कुछ लोग अब भी उनके प्रभाव में काम करते हैं परन्तु अधिकतर लोग स्वतंत्रतापूर्वक अपने रोज़गार चुन लेते हैं अथवा जिन कामों में वे लगना चाहते हैं, लग जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र अब नगरीय संस्कृति और नगरीय संपर्कों से अछूते नहीं रहे हैं। गांवों के लोग आजीविका के लिये अब केवल खेती पर निर्भर नहीं करते। कृषि संबंधी समस्यायें मीडिया पर समाचार का विषय नहीं बनती, अब भारत के किसान राष्ट्रीय संस्कृति के प्रतीक बने रहना पसंद नहीं करते। ज़्यादातर लोग खेती पर निर्भर न करके नौकरियां करना पसंद करते हैं। 1990 के बाद भारत के समग्र उत्पादन का सतर प्रतिशत हिस्सा नौकर पेशा वर्ग के द्वारा पूरा होता है। खेती का योगदान मात्र 30 प्रतिशत रह गया है। पहले कभी किसानों के आत्महत्या करने जैसी खबरें नहीं आती थीं। गरीबी और पिछड़ेपन से जुझने तथा प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने के बावजूद भारतीय ग्रामीण किसान कभी आत्महत्या नहीं करते थे, लेकिन 21वीं सदी में विदर्भ में किसानों की आत्महत्या का समाचार और उतर प्रदेश जैसे सबसे बड़ी आबादी वाले राज्य में आत्महत्याओं के समाचार चौंकाने वाले हैं। यह आत्महत्यायें आर्थिक नीतियों तथा ग्रामीण भारत में आने वाले बदलावों की वजह से हुई हैं।

ग्रामीण व कृषि क्षेत्र संबंधी समस्याओं की जड़ें ब्रिटिश राज्य में निहित हैं। ब्रिटिश शासनकाल में कृषि भूमि के मालिकाना हक को लेकर तथा अन्य संबंधित समस्याओं को लेकर अनेक बार भूमि सुधार किये गये जिससे कृषि पर निर्भर ग्रामीण समाज का ढांचा ही बदल गया। जब देश को आज़ादी मिली, तो कृषि व ग्रामीण क्षेत्रों की अस्त व्यस्तताओं को समेटने के लिये अनेक भूमि सुधार कानून लाये गये। कुछ दशकों बाद देश को कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने के लिये हरित क्रांति योजना भी लागू की गई (1962-1970)। इसके माध्यम से देश में कृषि उत्पादों में वृद्धि हुई तथा ग्रामीण किसानों के बीच असमानता भी बढ़ी। बाद के वर्षों में भारतीय ग्रामीण समाज पर उदारीकरण तथा वैश्वीकरण का भी प्रभाव बढ़ गया। कृषि उत्पादों की बिक्री अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी होने लगी और किसान व्यावसायिक खेती करने में रुचि लेने लगे। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपने उत्पादों को पहुंचाने की दृष्टि से बड़े किसान व्यवसायिक स्तर पर खेती करने लगे। भारत में जिस तरह से पहले खेती हुआ करती थी, अनेक किसान उस तरह से खेती करना छोड़ चुके हैं। परन्तु

आधुनिक तकनीक द्वारा खेती करने के तरीके अपनाने में भी वे पूरी तरह पारंगत नहीं हैं। अतः छोटे तथा मध्यम दर्जे के किसानों को खेती से सही उत्पादन लेने और खेतों में उत्पन्न उत्पादों का सही मूल्य प्राप्त करने में अब भी कठिनाइयां आ रही हैं। बड़े किसान आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण की लहर से उपजे अवसरों को पूरा लाभ उठा पा रहें है। वे खेती की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाते हुए अधिक उत्पादन लेने में भी समर्थ हैं और कृषि उत्पादों का उच्चतम मूल्य प्राप्त करने में भी समर्थ हैं। खेती पर निर्भर औसत किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। वे अपनी फसलों से इतना उत्पादन नहीं ले पाते कि अपने परिवारों के सभी खर्चे सही से चला सकें। शिक्षा संस्थानों और स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या तो ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ी है। परन्तु उनमें मिलने वाली सेवाओं का स्तर नगरों की तुलना में बहुत नीचा है। ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग धन्धों का भी अभाव है और रोजगार के अवसरों का भी। इसलिये, ग्रामीण क्षेत्रों के युवा अच्छी शिक्षा और रोजगार की प्राप्ति के लिये शहरों का रूख कर रहे हैं।

गांवों में अभी देश की आधी से अधिक आबादी रहती है, परन्तु इतनी बड़ी आबादी के लिये सामान्य जीवन ठीक से जीने और विकास के अनुकूल व्यवस्था व वातावरण का सर्वथा अभाव है। ग्रामीण जीवन मूल्य शहरीकरण व वैश्वीकरण के कारण तेजी से बदले हैं। सांस्कृति मूल्यों के प्रति रुझान में भी कमी देखने को मिल रही हैं। ग्रामीण युवक अब परम्पराओं में कैद होकर नहीं रहना चाहते।

2.5.2 नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन

जिस दौर में हम सामाजिक परिवर्तन पर विचार कर रहे हैं, उसमें नगरों की संरचना में होने वाले परिवर्तनों पर विचार करना सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण है। आप किसी भी नगर में चले जाइये, उसके बाहय क्षेत्रों में इमारतें बनती हुई देखेंगे। नगरों के आकार और उनकी संरचना में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं। इस परिवर्तन के पीछे दोनों ही कारण हैं एक यह कि उद्योगीकरण के कारण नगरों में आकर बसने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही हैं, और उन्हें रहने के लिये आवास चाहिये, दूसरा यह कि नगरों में सम्पत्ति की कीमतें प्रायः बढ़ती रहती हैं। अतः लोग घर या प्लॉट खरीदकर डालना पसंद करते हैं। नगरों में औद्योगीकरण तकनीकी क्रांति तथा संचार मीडिया की उपस्थिति के कारण लोगों की जीवनशैली में भारी परिवर्तन आया है।

स्वतंत्र भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया था। इसके तहत ऊर्जा, यातायात आदि अनेक क्षेत्रों पर सरकार ने अपना नियंत्रण रखा तथा अन्य क्षेत्रों में काम करने की जिम्मेदारी निजी औद्योगिक घरानों को सौंप दी। मिश्रित अर्थव्यवस्था के कारण लघु उद्योगों को भी बढ़ावा मिला। जब से देश में उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण (एल.पी.जी) अपनाया गया, तब से विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवायें देने वाले लोगों की ज़रूरतें बढ़ती चली गई और ग्रामीण क्षेत्रों से भी बड़ी संख्या में लोग विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवायें देने के उद्देश्य से नगरों में आने लगे। इससे नगरों में मध्यम वर्ग की संख्या बढ़ती चली गई। साथ ही निम्न वर्ग के लोगों की संख्या भी बढ़ी। निम्न मध्यम वर्ग में अधिकतर वे लोग आते हैं, जो कम पढ़े-लिखें होते हैं अथवा पढ़ें-लिखें नहीं होते। वे गांवों से आकर शहरों में बस जाते हैं और मज़दूरी आदि करके किसी तरह गुज़ारा करते हैं।

विकास की प्रक्रिया तथा वैश्वीकरण की प्रवृति ने नगरों के भूगोल बदल दिये हैं। नगरों की संस्कृति भौतिकवादी होती जा रही है। नगरों में बहुमंजिली इमारतें बनाने को प्राथमिकता दी जाने लगी हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है और क्रय-विक्रय केन्द्रों तथा बाज़ार परिसरों का स्तर अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों की ओर होता जा रहा है। प्राइवेट

कंपनियों का दखल लगातार बढ़ता जा रहा है और सरकारी हस्तक्षेप कम होता जा रहा हैं। निजी कंपनियां अपनी शर्तों पर कर्मचारियों की नियुक्तियां करती हैं। इससे कर्मचारियों की दशाओं जीवनशैलियों, लैंगिक अवधारणाओं, जाति व वर्ग के आधारों में परिवर्तन आता जा रहा है। प्रतियोगिता की भावना तेज़ी से बढ़ रही है और कर्मचारी असुरक्षा महसूस करने लगे हैं। नगर में रहने वाले लगभग सभी लोग बढ़ती दुर्घटनाओं की दर तथा अपराधों में वृद्धि के कारण प्रायः असुरक्षित महसूस करने लगे हैं। जीवन मूल्यों के प्रति रूझान परस्पर विश्वास तथा मान्यताओं में भारी परिवर्तन आ रहे हैं। आधुनिकता के इस दौर में अच्छी शिक्षा की ओर रूझान तेज़ी से बढ़ा है। नये-नये शिक्षण संस्थान तथा प्रशिक्षण संस्थान खोले जा रहे हैं जिनमें उच्च कोटि की प्रतिभाओं को निखारने और युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में विशेष रूप से योग्य बनाने के लिये प्रयास किये जा रहे हैं। इन सब कारणों से श्रम विभाजन तेज़ी से बढ़ रहा है और पूंजीवादी प्रवृत्ति तेजी से उभरती जा रही है।

मध्यम वर्ग में शिक्षा के प्रति रुझान तेज़ी से बढ़ा है। पाश्चात्य मूल्यों के नगरों में तेज़ी से उतरते जाने के कारण पश्चिमी संस्कृति के मूल्यों तथा भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के बीच टकराव की स्थिति बढ़ी है। वैश्वीकरण के कारण विभिन्न संस्कृतियों के लोग एक दूसरे के संपर्क में आते हैं और पाश्चात्य मूल्य सीधे महानगरों में उभरते हैं और फिर धीरे-धीरे छोटे शहरों को भी प्रभावित करते हैं। महानगरों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेज़ होने की वजह से सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति रुझानों में परिवर्तन आ रहा है। सांस्कृतिक टकराव बढ़ रहे हैं। समाजशास्त्री मुखर्जी के अनुसार सांस्कृतिक टकरावों के संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, परन्तु क्योंकि सांस्कृतिक रूप से अलग-अलग पृष्ठभूमियों के लोगों की अंततः रहना तो साथ-साथ ही है, अतः उनमें एक-दूसरे को समझने, एक दूसरे के साथ सामंजस्य बैठाने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। इससे समाज की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में बढ़ा बदलाव आता जा रहा है। खान-पान, व्यवसाय, कपड़े पहनने की अभिरुचियों, स्त्री-पुरुष संबंधों, रीति-रिवाज़ों, त्यौहारों आदि में भारी परिवर्तन आता जा रहा है।

बोध प्रश्न 4

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) निम्नलिखित कथनों में से सही कथन के आगे 'सही' तथा गलत कथनों के आगे 'गलत' लिखिए -

अ) कृषि अब भी भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रधान घटक है। ( )

ब) नगरों का विस्तार हो रहा है और गांव सिकुड़ते जा रहे हैं ( )

स) ग्रामीण क्षेत्रों में बहुमंजिली इमारतें बन रही हैं। ( )

द) उदारीकरण से नीतिगत परिवर्तन आ रहे हैं। ( )

2.6 सारांश

इस इकाई में हमने परिवर्तन के अर्थ को विभिन्न अवधारणाओं, विचारों तथा सिद्धान्तों के आधार पर समझते हुए भारत में परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन किया। हमने जाना कि समाज अनेक बाह्य एवं आन्तरिक कारणों से सदैव बदलते रहते हैं। भारत में परिवर्तन के विभिन्न कारणों को हमने समझने का प्रयास किया। इनमें से कुछ कारण ऐसे हैं, जो अभी भी मौजूद हैं। क्योंकि भारत का परिवर्तन का लक्ष्य विकास की ओर निरन्तर बढ़ते जाना है और भारत एक विकसित राष्ट्र बनना चाहता है। अतः स्पष्ट है कि परिवर्तन तो होते ही

रहेंगे। ज्यों-ज्यों भारत के लोगों के ज्ञान के क्षेत्र में वृद्धि होती रहेगी, भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास होता रहेगा तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया चलती रहेगी त्यों-त्यों भारत के लोगों के विचारों, विश्वासों तथा आदर्शों में व्यापक रूप से परिवर्तन आते रहेंगे। भारत में आधुनिकीकरण होता रहा है, परन्तु उसकी गति अधिक तेज नहीं है, और इसकी वजह यह है कि भारत में इस समय दो तरह की सोच वाले लोग मौजूद हैं। एक वे जो भारत की सांस्कृतिक परम्पराओं को बनाये रखना चाहते हैं और दूसरे वे, जो सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़कर आधुनिकीकरण की दौड़ में बहुत आगे निकल जाना चाहते हैं। इन दोनों प्रकार के लोगों के बीच टकराव और संघर्ष की स्थिति जारी है। यही कारण है कि व्यापक स्तर पर नगरीकरण तथा वैश्वीकरण के बावजूद भारत के अधिकांश लोग अभी तक पारम्परिक, सांस्कृतिक मूल्यों से चिपके हैं और भारतीय समाज का ढांचा तेजी से बदल नहीं पा रहा।

2.7 संदर्भ

- मॉडर्नाइज़ेशन ऑफ इण्डियन ट्रैडीशन, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एण्ड न्यू दिल्ली - योगेन्द्र सिंह (1996)।
- अंडरस्टेंडिंग चेंज : एंथ्रोपॉलोजिकल एण्ड सोश्योलॉजिकल पर्सपैक्टिव्स, विकास पब्लिशिंग हाउस, न्यू दिल्ली - एस. सी. दुबे (1996)।
- 'सोशल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया', ओरियण्ट लॉंगमैन- एम. एस. श्री निवास (1989)।
- 'सोश्योलॉजी, पोलिटी', कैम्ब्रिज - एन्थनी गिडेन्स (2001)।
- सोश्योलॉजीः ए गाइड टू प्रोब्लम्स एण्ड लिट्रेचर, III एडीशन लन्दन : एलैन एण्ड अनविन - टी. बॉटोमोर (1987)।
- द स्टेट डिवलपमैन्ट प्लानिंग एण्ड लिबरेलाइजेशन, न्यू दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस, न्य दिल्ली - जे. वायर्स. टैरेंस (1997)।
- दी अदर साइड ऑफ डिवलपमैन्ट, सेज पब्लिकेशन्स न्यू दिल्ली - के. एस. षुक्ला (1987)।
- 'इण्डिया : सोशल स्ट्रक्चर', ''हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कॉरपोरेषन (इण्डिया) : दिल्ली - एम. एन. श्रीनिवास (1986)। (ऑरीजिनली पब्लिष्ड इन 1969 वाई द डाइरैक्टर, पब्लिकेशन्स डिवीजन, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फॉर्मेषन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग : न्यू दिल्ली)।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) सामाजिक परिवर्तन उस बदलाव को कहते हैं जो समाज के ढांचे तथा सामाजिक संबंधों में होता है।

ii) सामाजिक परिवर्तन बदलाव की एक प्रक्रिया है परन्तु यह परिवर्तन अच्छे या बुरे की श्रेणी में नहीं गिना जाता। सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन आने से समाज में परिवर्तन आता है। परन्तु परिवर्तन की गति सदैव एक सी नहीं होती और ना ही इसकी संभावना पहले से सुनिश्चित होती है।

iii) क्रमतर विकास में सतता है और उसमें परिवर्तन की एक निश्चित दिशा होती है, तथा परिवर्तन केवल आकार में नहीं होता, बल्कि पूरी संरचना में होता है। परन्तु प्रगति में

परिवर्तन उस दिशा में होता है जिसमें कि हम चाहते हैं। परिवर्तन मूल्य आधारित होता है जिसके अंतर्गत सामाजिक संरचना और सामाजिक संबंध दोनों ही बदल जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

i) अ) गलत

ब) सही

स) सही

द) गलत

ii) कार्ल मार्क्स और ऐंगल्स के अनुसार सामाजिक परिवर्तन और विकास के मूल में समाज में मौजूद विभिन्न वर्गों के हितों के टकराव होते हैं। वे यह तर्क देते हैं कि समाज में परिवर्तन निरंतर नहीं होते, बल्कि वर्गों के टकरावों के फलस्वरूप जब तब घटित होते हैं।

iii) अ) हरबर्ट स्पैन्सर

2) आधुनिकता के सिद्धान्त का मत है कि हर समाज के विकास की समस्याओं को विश्व प्रणाली में उसके स्थान के आधार पर समझा जा सकता है, परन्तु इससे यह साबित नहीं हो जाता कि सभी विकासशील देश अपने विकास के लिये विकसित देशों को पूरी तरह अनुसरण करते हैं। आधुनिकता के सिद्धान्त यह समझाने में पूरी तरह असफल रहे हैं कि विकासशील देश किस प्रकार की सामाजिक और आर्थिक प्रक्रिया अपने विकास के लिये अपना रहे हैं।

बोध प्रश्न 3

i) जीवन के सामान्य संदर्भों में आधुनिकता के सिद्धांतों का पालन करना 'आधुनिकीकरण' कहलाता है।

ii) हां

iii) उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण

बोध प्रश्न 4

1) अ) गलत

ब) सही

स) गलत

द) सही

अन्य संदर्भ

- द क्रोनिकल्स ऑफ अवर टाइम, पेंगुइन बुक्स इंडिया, न्यू दिल्ली - ए. बेते 2000।
- कंटैरी इंडिया : ए सोशल व्यू, वाइकिंग, न्यू दिल्ली - सतीश देशपांडे, 2003।
- मॉर्डनाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडीशन, रावत पब्लिकेशेन्स जयपुर एण्ड न्यू दिल्ली - योगेन्द्र सिंह, 1996।
- अंडरस्टेंडिंग चेंज : एंथ्रोपॉलोजिकल एण्ड सोशल पर्सपेक्टिव्स, विकास पब्लिशिंग हाउस, न्यू दिल्ली – एस. सी. दुबे, 1996।